

उर्दू की हास्य-रस रचनाओं के हिन्दी भाषा में कुछ अनुवाद अवश्य प्रकाशित हुए हैं, परन्तु उन सबमें एक-एक लेखक ही की कृतियाँ समाविष्ट हैं। कोई ऐसी पुस्तक हमारी नज़र से नहीं गुजरी जिसमें विभिन्न लेखकों की चुनी हुई कृतियों का संकलन किया गया हो। प्रस्तुत पुस्तक में इस अभाव की पूर्ति का प्रयत्न किया गया है। इस पुस्तक में लगभग उन सभी लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों का प्रतिनिधित्व मौजूद है, जिन्होंने उत्कृष्ट हास्य और व्यंग्य की छटा से उर्दू कहानी साहित्य की उपादेयता को और भी आकर्षक और मर्मस्पर्शी बना रखा है।

इस पुस्तक के लिये कहानियों के निर्वाचन में काफी परिश्रम से काम लिया गया है। क्योंकि यह पुस्तक उर्दू के किसी पहले से संकलन का अनुवाद नहीं है। प्रस्तुत अनुवादक ने स्वयं उर्दू के साहित्य का विशद् अध्ययन करने के पश्चात् सुन्दर-सुन्दर कहानियों का संकलन करके उनका अनुवाद प्रस्तुत किया है। इससे इस पुस्तक की विशेषता का अनुमान हो सकता है। आशा है, इसे साहित्य जगत् में उचित स्थान मिलेगा।

—प्रकाशक

उर्दू की हास्य-रस कहानियाँ

संकलन-कर्ता व अनुवादक
जगन्नाथ प्रभाकर

प्रकाशक
सन्मार्ग प्रकाशन
दिल्ली

प्रकाशक
सन्मार्ग प्रकाशन,
लाजपतराय मार्केट दिल्ली

मूल्य:—तीन रुपये, पचास नये पैसे

प्रथम संस्करण नवम्बर [illegible]

मुद्रक
शुक्ला प्रिंटिंग एजन्सी द्वारा हरिहर प्रेस दिल्ली

दो शब्द

स्थानाभाव के कारण मै उर्दू-हास्य-रस-साहित्य और इस पुस्तक में संकलित हास्य-रस कहानियों अथवा इन के लेखकों के कला-नैपुण्य और शैली के विषय में साधारण या विशेषरूप से कुछ लिख नहीं सका। इस के लिये क्षमा चाहता हूँ। हाँ, रस्मी तौर पर ये दो शब्द लिखने का अवसर प्राप्त करके इतना अवश्य कहना चाहता हूँ कि साहित्य में उत्कृष्ट हास्य-व्यंग्य की सृष्टि हर किसी साहित्यकार के बस की बात नहीं। यही कारण है कि संसार की प्रायः सभी भाषाओं के साहित्य सचमुच हास्य-रस के प्राचुर्य से वंचित हैं। उर्दू साहित्य में भी इस प्राचुर्य का अभाव कोई विचित्र बात नहीं। परन्तु यह अभाव ऐसा नहीं जो अखरता हो।

उर्दू साहित्य में हास्य-व्यंग्य का जितना कुछ भी सजन हुआ है, उसे संसार के इस श्रेणी के किसी भी समुन्नत साहित्य के शाना-बशाना खड़ा किया जा सकता है और उस में भी अनेक ऐसी रचनाएँ मौजूद हैं, जो अपनी गुदगुदाती चमक-दमक और मुस्कराती-चहकती सौंदर्य-सुषमा से अनायास ही दिलों को खींच लेती हैं। ऐसी ही कुछ रचनाएं इस पुस्तक में संकलित करने का प्रयत्न किया गया है। मैं यह नहीं कहता कि सभी उत्कृष्ट रचनाएँ जुटा पाया हूं या उर्दू-हास्य के सभी प्रख्यात लेखकों की रचना-प्रतिनिधित्व प्राप्त कर सका हूँ। हो सकता है, कुछ ऐसा लेखक रह गये हों जैसा कि स्वयं मेरी जानकारी में ऐसे कुछ लेखक हैं, जिनकी कोई भी कृति, पर्याप्त खोज के बावजूद प्राप्त न हो सकने के कारण नहीं दी जा सकी। फिर भी मुझे भरोसा है कि जितनी रचनाएँ, यहाँ दी गई हैं, उनमें आप हास्य रस का यथोचित आस्वादन पायेंगे। इन रचनाओं में, आप मुस्कराहटें भी पायेंगे हास्य और ठहाके भी, गुदगुदियाँ और चुटकियाँ भी। फिर इन चहचहों और ठहाकों के मध्य आप हृदयंगम कर जायेंगी कुछ काम की बातें भी, नसीहतें भी और कुछ मनोविज्ञान का दिलचस्प अध्ययन भी।

—प्रभाकर

विषय सूची

नीली झील

यह उन दिनों की बात है, जब रूफ़ी के दान्त पर बिजली गिरी या कम से कम रूफ़ी का ख़याल था कि बिजली गिरी है। रूफ़ी बिजली से बहुत डरते थे। जब बादल आते, तो रूफ़ी बिस्तरों में छिपते फिरते। सब कहते यदि बिजली को गिरना है, तो अवश्य गिरेगी। रूफ़ी उत्तर देते। "बेशक गिरे, लेकिन इस तरह उसे मुझे ढूंढना तो पड़ेगा।"

हुआ यूं कि वर्षा अभी-अभी थमी थी, रूफ़ी सोफ़े के पीछे से निकल कर दबे पांव बरआमदे तक गये यह देखने कि बादल छुट गये हैं या नहीं। इतने में जोर से बिजली कौंदी और एक अत्यन्त शानदार धमाका हुआ। रूफ़ी जब होश में आये, तो उनका एक दान्त हिल रहा था। उन्होंने दर्पण देखा, तो दान्त का कुछ हिस्सा काला हो चुका था। अगले दिन आस-पास मशहूर हो गया कि रात रूफ़ी मियां के दान्त पर बिजली गिरी है। वे दो दिन तक बिस्तरे पर पड़े रहे। परन्तु इस प्रकार हम अपनी आने वाली परीक्षा से बच न सके। उस कम्बख्त परीक्षा ने हमारी नींद उड़ा रखी थी। मास्टर साहब ने हमारे साथ विशेष कृपा की और परीक्षा कुछ दिनों तक स्थगित कर दी।

हमारे मास्टर साहिब बड़े ख़ूंख़ार किस्म के आदमी थे। यूं वे बैचलर आफ आर्टस थे, किन्तु बाद में पता चला कि विवाहित हैं और कई बच्चों के बाप हैं। वे उन महानुभावों में से थे, जो आप से प्रश्न पूछेंगे, आप की ओर से स्वयं उत्तर देंगे और आपको डाटेंगे भी कि उत्तर ग़लत था। उनके नौकर की ज़ुबानी मालूम हुआ कि उन्हें नींद में चलने फिरने की बीमारी थी और सोते-सोते पैदल चला करते थे। हालांकि

"सिद्ध करो कि कलम (लेखनी) तलवार से अधिक महत्त्व रखती है।"

"जनाब तलवार से चैक पर हस्ताक्षर नहीं किये जा सकते।"

मास्टर साहिब कुछ कुछ रोष में आ चले थे। उन्होंने मेरी ओर देखा और बोले— आस्ट्रेलिया कहाँ है ?"

"जी भूगोल के पचासवें पृष्ठ पर।"

"भूगोल की पुस्तक में नहीं वैसे कहाँ है ?"

"जनाब आस्ट्रेलिया पृथ्वी के गोले पर है।"

"तरबूज के लाभ बताओ ?"

"तरबूज एक ऐसा फल है, जिसे खा भी सकते हैं पी भी सकते हैं और उससे हाथ मुँह भी धो सकते हैं।'

"और नारियल—?,,

"जी—नारियल पर टिकट लगा कर और पता लिखकर पार्सल के रूप में भेज सकते हैं।"

" अच्छा हुरूफ़ि-इज़ाफ़त१ क्या होते हैं ?'

"जनाब हुरूफ़ि-इज़ाफ़त वे होते हैं, जो इज़ाफ़ा अर्थात् वृद्धि करते हैं

---

१. हुरूफ़ बहुवचन है हर्फ़ का और अर्थ है अक्षर। इज़ाफ़त का अर्थ है Addition वृद्धि जियादती। फ़ारसी के व्याकरण में यह दो संज्ञाओं में षष्टि विभक्ति या सम्बन्ध स्थापित करने के लिये संज्ञा के अंतिम अक्षर के साथ कस्त्र ज़ेर (मात्रा) के रूप में लगाई जाती है। आवाज 'इ' की मात्रा के बराबर होती है। संज्ञाके साथ विशेषण को जोड़नेमें भी प्रयुक्त होती है उदाहरण—(१) 'गुलि-सुर्ख़' अर्थ गुल=फूल, सुर्ख़=लाल अर्थात् लाल फूल। गुल को जो 'इ, की मात्रा " ि ,, लगाई गई है यह इज़ाफ़त है और संज्ञा के साथ विशेषण को जोड़ती है। (२) दीवानि-गालिब अर्थ=गालिब का दीवान,, "न' अक्षर को 'ि' की मात्रा लगाकर दो संज्ञाओं में षष्टि विभक्ति स्थापित की गई है।

और जिन्हें पढ़ कर कुछ और हुरुफ़ याद आ जाते हैं।"

"उदाहरणार्थ—"

"उदाहरणार्थ, 'घड़ी-साज़ यूं मालूम होता है, जैसे 'ज़माना-साज़' हो। पालतू फालतू मालूम होता है। मुजर्रद मुजर्रब, और बन्दा-नवाज़ तबला-नवाज़ मालूम होता है।"

"बस बस—"मास्टर साहिब बिल्कुल ख़फ़ा हो गये। अब नन्हे मियां को बुलाया गया।"

"नन्हे! गिनती गिन कर दिखाओ—" मास्टर साहिब बोले।

"एक, दो, तीन, चार, पांच, छः सात, आठ, नौ, दस, गुलाम, बेगम और बादशाह" नन्हे ने एक विजेता के गौरवमय ढंग से कहा। इसमें गरीब नन्हे मियां का भी दोष नहीं था। उन दिनों घर में ताश का रवाज़ और राज था।"

सायं समय मास्टर साहिब हमारे यहां आए, रूफ़ी के अब्बा से देर तक बातें होती रहीं और सोते समय बताया गया कि हमारी शिक्षा की हालत बहुत कमजोर है। अतः मास्टर साहिब घर पर पढ़ाने आया करेंगे इस सूचना ने हमें उदास कर दिया।

+ + +

अगले दिन रविवार था। सवेरे ही हमने मछलियां पकड़ने का सामान लिया और झील का रास्ता पकड़ा। इस ट्यूशन की नई मुसीबत ने हमें अत्यन्त शोकग्रस्त कर दिया था। ऐसा जान पड़ रहा था कि जो रही-सही स्वतन्त्रता प्राप्त थी, वह भी छिन गई है।

झील के स्वच्छ और नीले पानी पर हल्की धुन्ध छाई हुई थी। दूर बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े हवा में तैर रहे थे। किनारों पर फूलदार बेलें और पौदे झुके हुए थे और असंख्य तितलियां उड़ रही थीं। झील के किनारे दूर तक चले गये थे। दूसरा किनारा बहुत दूर था और कभी-कभी दिखाई देता था। जब वर्षा थमी हो या दिन सर्वथा साफ़ हो, तो प्रत्येक बार नये रूप में दिखाई देता। कभी दूर दूर तक महुल

और दुर्ग दिखाई देते, कभी घने हरे-भरे बाग और कभी रेत के टीले और खजूर-वन दिखाई देते। हम प्रत्येक रविवार झील के किनारे गुजारते, बडे समारोह से मछलियां पकड़ने का कार्यक्रम बनता। मछलियां भूनने का सामान भी साथ होता। हमारे मछलियाँ पकडने के तरीके भी सर्वथा ठीक थे, परन्तु हमने कभी वहाँ एक भी मछली नहीं पकड़ी। इन्जीनियर साहिब और डाक्टर साहिब का खयाल था कि इस झील में मछलियां बिल्कुल नहीं थीं, परन्तु हमें इस पर तनिक विश्वास न आया। ऐसी सुन्दर मनोहर झील में तो मछलियां दूर-दूर से आ कर रहेंगी।

हम उदास होते या हमें धमकाया जाता, तो हम सीधे झील का मार्ग मापने लगते। (१) वंसियाँ पानी में डालकर घास और फूलों पर बैठ जाते बादशाहों, परियों और समुद्री डाकुओं की कहानियां पढ़ते। ज़रा सी देर में हम भूल जाते कि इस सुन्दर कुंज के अतिरिक्त ससार के और भाग भी हैं, जहां स्कूल है, स्कूल का काम है, मास्टर साहिब की डाँट है, घर वालों की घुडकियां हैं—हम दूसरे किनारे की बातें करते, जिसे देखने का हमें बेहद शौक था। हम कल्पना करते, अनुमान लगाते कि वहां क्या कुछ होगा, शायद वहा और प्रकारकी दुनियां होगी और प्रकार के लोग होंगे। हमने कई बार संकल्प किया कि कहीं से एक नाव लेकर चुपके से निकल जायँ और झील को पार करके दूसरी ओर जा पहुचें, परन्तु हमें नाव न मिल सकी। हमें तैरना न आता था। किनारे-किनारे चल कर दूसरी ओर जाना सम्भव न था, क्योंकि मार्ग में कई बाधाएं थीं।

जब हम चाँदनी रात में झील के किनारे बैठकर एक दूसरे को परियों की कहानियाँ सुनाते, तो जैसे सारे पात्र और नायक हमारी आँखों के सामने चलने-फिरने लगते। चाँदनी कुछ यूँ बदल जाती और दूसरा किनारा ऐसा जादूभरा भूखण्ड जान पड़ता कि हम सचमुच परियों के देश में पहुंच जाते। दिन में जब समुद्री लुटेरों की कहानियाँ पढ़ी जातीं, तो हमारा लिबास भी लुटेरों जैसा होता। सिर पर काले रूमाल बाँधे जाते,

छोटी-छोटी नावें बनाकर झील में छोड़ी जातीं, हवाई बन्दूकों और पटाखों से झूठ मूठ की लड़ाई होती। एक काल्पनिक द्वीप पर अधिकार किया जाता। वहाँ से ख़ज़ाना निकल आता।

जब तेज़ धूप निकलती, भौंरे गाने लगते, हवा रुक जाती और भाँति-भाँति की सुगन्धियां वातावरण में रच जातीं, तो हम आँखें बन्द किये तन्द्रा में रंग-बरंगे (१) स्वप्न देखने लगते। यदि वह झील वहाँ न होती तो न जाने हमारे दिन क्योंकर गुज़रते। क्योंकि घर में प्रत्येक व्यक्ति हमारा शत्रु था और डाँटने पर तुला था। उनका रवैय्या यह था कि यदि कुछ किया है, तो क्यों किया है और यदि नहीं किया, तो क्यों नहीं किया। उन दिनों सब के दिलों में यह ख़याल बैठ गया था कि हम दोनों अयोग्य हैं—नालाइक़ हैं और बिल्कुल नहीं पढ़ते। पिता जी की तबदीली पूर्ववत आबादी से दूर किसी उजाड़ स्थान पर हो गई और मुझे रूफ़ी के यहाँ भेज दिया गया। घर से प्रत्येक पत्र में जोर देकर लिखा होता कि लड़के की पढ़ाई का विशेष ध्यान रखा जाय। अस्तु विशेष से भी अधिक ध्यान रखा जाता। गेहूं के साथ घुन बराबर पिसता और नन्हे मियाँ की खूब सेवा होती। नन्हे मियाँ सोने से पहले खुदा से दुआ माँगते कि या रब्बुल आलमीन—सारे ब्रह्माण्ड के स्वामी—हमारे परिवार वालों को शुभ उपदेश दे और सम्मति दे और बता कि छोटे बच्चों के साथ कैसा बर्ताव होना चाहिये, क्योंकि अब तक यह लोग इस गुर से अनभिज्ञ हैं।

घर में कई नौकर थे, जिन में सब से सीनियर रुस्तम था। वह अधेड़ आयु का था। उसका तकिया कलाम "रखी है" था। कोई पूछता—"मियाँ रुस्तम मेरी ऐनक कहाँ गई—?" उत्तर मिलता—"जी, फ़र्श पर रखी है।" मेरे कागज-पत्र कहाँ गये? "जी रद्दी की टोकरी में रखे

१. 'रंग-बिरंग' लिखना अर्थों और मुहावरे की दृष्टि से गलत है। यह फ़ारसी की तरकीब है। इसे 'रंग-बा-रंग' या रंग-ब-रंग लिखना चाहिये। —प्रभाकर

हैं।"—'मेरा बटुआ कहाँ गया ?"—"जी, हौज की तह में रखा है। नन्हे मियाँ फेंक आये हैं।" उसे रेडियो का बेहद शौक था। जब देखो रेडियो से कान लगाए सुन रहा है। एक बार अंग्रेजी खाना खाते समय किसी ने रकाबी की ओर संकेत कर के पूछा—"यह क्या चीज है ?" रुस्तम तुरन्त बोला—"जी भाग का ख्याल है, बलमपत लय में।" उस समय रेडियो पर पक्का गाना हो रहा था। हमें रसोइये ने बताया कि प्रातः उठ कर रुस्तम इस प्रकार दुआ माँगता है—कि ऐ खुदा इस समय सवा छः बजा चाहते हैं, अब आप हिन्दुस्तानी में दुआ सुनिये। यह दुआ दुपहर के एक बजे और रात के नौ बजे फिर मांगी जायगी। इस दुआ के विशेप-विशेप शीर्षक ये हैं—कल फिर इसी समय दुआ मांगूगा। अच्छा अब आज्ञा दीजिये। आदाब अर्ज़—जय हिन्द।" कई बार तो रुस्तम दुआ के बाद खुदा को मौसम का हाल भी बताया करता।

रसोइया बेहद मोटा था, इतना कि चित्र खींचते समय उसके कई चित्र लेने पड़ते थे, ताकि वह पूर्णरूपेण ठीक आ जाय। वह प्रत्येक समय हँसता रहता था। प्रायः उससे पूछा जाता कि हंसते क्यों हो ? उत्तर मिलता—"जनाब शक्ल ही ऐसी है।" उसकी बातचीत सुनकर ऐसा लगता था, जैसे देहाती प्रोग्राम हो रहा हो।

कई बार जान-बूझ कर बहरा बन जाता। हम आवाजें देते रहते और बिल्कुल न सुनता। एक बार रूफ़ी चिल्लाते रहे और वह साथ के कमरे में चुपचाप सुनता रहा। हम खिड़की से देख रहे थे। उससे पूछा गया कि इतनी आवाजें उसे क्यों सुनाई नहीं दीं ? तो बोला, "मैंने आपकी पहली आवाजें नहीं सुनीं। केवल चौथी आवाज सुनी थी।"

एक बार हमारा घोड़ा खोया गया। सब ने बारी-बारी ढूंढा। किसी को न मिला रसोइया गया और घोड़ा पकड़ लाया। पूछा कि तुम्हें यह किस तरह मिल गया ? आप बोले—'सब से पहले मैंने यह सोचा कि यदि मैं घोड़ा होता और खोया जाता, तो कहाँ जाता ? बस मैं सीधा उसी स्थान पर पहुंचा और घोड़ा वहीं खड़ा था।'

घर में बहुत से पालतू जानवर और पंछी थे। एक तोता, जो रूफ़ी के पिता के कार्यालय में रहता था, उसे कुछ वाक्य याद थे। जब कोई आता, तो 'हैलो' कहता। फिर कहता दरवाजा बन्द कर दीजिये। वह अन्दर आ जाता, तो उसे रूफ़ी के पिता के सम्बन्ध में कहता कि बाहर गये हुए हैं या घर में हैं। जाते समय फिर कहता, दरवाज़ा बन्द कर दीजिये। हमें विशेष रूप से कहा गया था कि हम तोते के साथ बातें किया करें और उसे अच्छे-अच्छे वाक्य सिखाया करें। परन्तु हमें देख कर उसे न जाने क्या हो जाता। वह एक वाक्य ही का जाप करने लगता, "मियां मिट्ठू हूं। मियां मिट्ठू हूँ।" हम उसकी प्रोत्साहना करते—'बोलो मिट्ठू! शाबाश, बातें करो। यह करो, वह करो।' नये-नये वाक्य सिखाते, परन्तु उसकी मियां मिट्ठू समाप्त न होती और साथ ही वह हमारी ओर इस अन्दाज़ से देखता, जैसे उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हो। प्रत्येक बार कुछ इस प्रकार की बात चीत होती—

"हैलो" वह कहता।
"हैलो भई तोते क्या हाल है?"
"मियाँ मिट्ठू हूं।"
"हां हो।"
"मियाँ मिट्ठू हूं।"
"सच कहते हो।
"मियां मिट्ठू हूं।"
"होगे।"
"मियाँ मिट्ठू हूं।"
"तो फिर क्या करें?"
"मियाँ मिट्ठू हूं, मियाँ मिट्ठू हूं।"
"मान लिया बाबा, मान लिया बाबा। अजीब नामाकूल तोता है।"
"मियाँ मिट्ठू हूं, मियाँ मिट्ठू हूं, मियाँ—" और हम वहाँ से चले आते।

कुछ सफेद रंग की मोटी-मोटी ईरानी बिल्लियां भी थीं; जो इतनी गर्वीली थीं कि किसी को कुछ समझती ही नहीं थीं। हां एक छोटी-सी बिल्ली बड़ी बुद्धिमती और समझदार थी। वह हमें सवेरे-सवेरे जगाया करती थी। चुपके से पलंग पर चढ़कर पाँव में हल्की सी गुदगुदी करती। जगा कर एक कोने में प्रतीक्षा करती कि कहीं हम पुनः न सो जाएँ।

बड़े कमरे में कुछ कालीन थे, इतने सुन्दर कि उन्हें फर्श पर देखकर हमें बड़ा खेद होता। मध्य में जो बड़ा कालीन था, उसका कुछ भाग जल गया था, इस तरह कि वहाँ पर न सोफा रखा जा सकता था, न कोई चीज। जब कभी मेहमान आते, तो वही समझदार बिल्ली उस जले हुए भाग पर बिठा दी जाती। वह कुछ इस अन्दाज से वहां बैठती, जैसे उसे किसी की भी परवाह नहीं है। उसे लाख बुलाते, बहलाते, फुसलाते, प्यार करते, परन्तु वह वहाँ से तब तक न हिलती, जब तक मेहमान न चले जाते। बाहर वालों में से किसी को पता तक न था कि हमारा सुन्दर कालीन जला हुआ है।

उन दिनों रूफ़ी और मैं ऊपर कमरे में रहते थे, क्योंकि रूफ़ी का ख़याल था, वह कमरा निचले कमरों की अपेक्षा अधिक ऊँचा है और समुद्र की सतह से अधिक ऊँचाई के कारण उसका जलवायु भी अच्छा है।

ट्यूशन आरम्भ हो गई। दिन भर शान्ति रहती। शाम को मास्टर साहिब तशरीफ लाते। चलते समय फालतू काम दे जाते, जिसके लिये देर तक जागना पड़ता। कई बार रूफ़ी के पिता हमें सैर पर साथ ले जाते और रास्ते भर भाँति-भाँति के उपदेश करते—यह करो, यह मत करो। यदि यूं करो, तो यूं अवश्य करो और यदि यूं नहीं करते, तो यूं भी मत करो। एक दिन उन्होंने हमें क्लब जाने को कहा। बोले, 'इस तरह तुम्हारी जानकारी में वृद्धि होगी और बात चीत करते समय अब जो झिझक अनुभव होती है, वह दूर हो जायगी।' अस्तु हम क्लब गये। जाकर देखते क्या हैं, एक बहुत बड़ी सजी सजाई बिल्डिंग सुनसान पड़ी

है और एक लम्बे से कमरे में बहुत से वयोवृद्ध महानुभाव सर्वथा उकताए बैठे है। हम एक कोने में चोरों की भाँति खड़े थे कि इन्जीनियर साहिब ने बुलाया और पास बिठा लिया। कुछ देर चुपचाप रही। वे बोले—"भाई लड़को! कोई बात चीत करो।" मैंने रूफी की ओर देखा। उन्होंने मेरी ओर संकेत किया। मैंने गला साफ किया और सोचने लगा कि क्या करूं। कुछ दिन पहले हमने सुना था, शाह अमानुल्लाह ख़ान ने सिंहासन छोड़ दिया है। चलो इस पर बातचीत आरम्भ करते हैं।

"वह आपने सुना, अमानुल्लाह ख़ान ने सिंहासन छोड़ दिया।"

"अच्छा कब?" इन्जीनियर साहिब बोले।

"कुछ दिन हुए।"

उनकी बगल में जो साहिब बैठे हुए थे, बोले—"किसने सिंहासन छोड़ दिया?"

"जी अमानुल्लाह ख़ान ने।"

"अहो!" कह कर मौन हो गये।

"क्या हुआ —कौन था?," एक महानुभाव, जो उनके बिल्कुल निकट बैठे थे, बोले।

"जी अमानुल्लाह ने सिंहासन छोड़ दिया।"

"ओह!"

उसके सामने बैठे हुए साहिब कुछ देर बाद चौंक कर बोले—"यह किन साहब का जिक्र हो रहा है?"

"जी अमानुल्लाह खाँ का।"

"उन्हें क्या हुआ?"

"उन्होंने सिंहासन छोड़ दिया।"

"अच्छा।"

"भई यह अकेले-ही-अकेले क्या बातें हो रही हैं—हमें भी तो बताओ!" एक ओर से आवाज़ आई।

"जी अमानुल्लाह् ख़ान ने सिंहासन छोड़ दिया।"

"अहो !, बड़ा अफ़सोस हुआ। कौन थे वे ?"

"जी बादशाह् थे ?"

"कहाँ के ?"

"अफ़ग़ानिस्तान के।"

"अच्छा !"

"मेरे दाहिने हाथ बैठे हुए साहिब एकदम उछल पड़े—"क्या किसी ने सिंहासन छोड़ दिया ?"

"जी हाँ !"

"किसने ?"

"अमानुल्लाह् ख़ान ने।"

"ओहो, अमानुल्लाह् खान ने।"

कुछ देर चुपचाप रही। फिर सामने के सोफे पर एक महानुभाव हड़बड़ा उठे—"यह कोई किसी के कुछ छोड़ देने की चर्चा कर रहा था। क्या हुआ ?"

"जी, अमानुल्लाह् खान ने सिंहासन छोड़ दिया।"

"अरे।"

सारांश यह कि इसी प्रकार बारी-बारी प्रत्येक व्यक्ति ने पूछा कि क्या हुआ ? और मुझे कोई पचास बार बताना पड़ा कि अमानुल्लाह् खान ने सिंहासन छोड़ दिया। हम अत्यन्त ऊब कर वापस लौटे। घर में सब बैठे बातें कर रहे थे। झील की बातें आरम्भ हो गईं। मछलियों के विषय में उनके सन्देह बराबर बने हुए थे। हमने बड़े विश्वास से कहा कि वहाँ बड़ी-बड़ी मछलियाँ हैं। हम प्रायः पकड़ते रहते हैं। हमने कई बार उन्हें भूना भी है।" बोले—"अच्छा, एक बार पकड़ो, तो लाना। हम भी चखेंगे।"

अगले रविवार हम प्रातः से सायं तक बंसियाँ पानी में डाले बैठे रहे, परन्तु कुछ न मिला। वापसी पर बाजार में मछली वाले से बड़ी-बड़ी

मछलियाँ खरीदी गईं और रसोइये के हवाले की गईं । संयोगवश उस सायं को सब कहीं बाहर आमन्त्रित थे । घर में केवल मैं और रूफ़ी थे और एक बुजुर्ग, जो नन्हे मियाँ को साथ बिठाकर खाना खाया करते । रात को उन्हें अच्छी तरह दिखाई नहीं देता । नन्हे मियां पहले तो उनके साथ खाने बैठ जाते, फिर चुपके से उठ जाते । इधर बिल्लयाँ पंक्तियाँ बाँधे, क्यू लगाये प्रतीक्षा में होतीं और बड़े सन्तोष के साथ आ बैठतीं । वे यही समझते कि नन्हे मियाँ साथ बैठे हैं । अतः वे बार-बार बिल्लियों से कहते—"नन्हे बेटे, भूखे मत रहना ।" चीजें उठाकर उनके सामने रखते । 'यह खाओ नन्हे ! यह भी खाओ बेटे !' उधर बिल्लियाँ बड़े मजे और सन्तोष से खातीं ।

अतः हमारी खरीदी हुई मछलियाँ उस दिन बिल्लियों ने खाईं । अगली बार हम झील पर गये और मछलियाँ खरीद कर लाय बाजार से, तो न जाने किस के परामर्श से मछलियाँ डाक्टर साहिब के यहाँ भेज दी गईं । इससे अगली बार इन्जीनियर साहिब के यहाँ । फिर एक दिन क्या हुआ कि सब के सामने मछलीवाला हिसाब लेकर आ गया । हमारा जब खर्च समाप्त हो चुका था और मछलियाँ उधार आ रही थीं; । सब को पता चल गया । हमारी खूब हंसी उड़ी । हमें आदेश किया गया कि हम भविष्य में झील पर न जाया करें । हम वहाँ केवल समय नष्ट करने जाते हैं । जब वहाँ मछलियाँ हैं ही नहीं, तो वहाँ जाना सर्वथा व्यर्थ है ।"

हम स्कूल का काम कर रहे थे । रुस्तम हमारे पास बैठा था । हमारे दिल में बार-बार यही खयाल आता था कि वहाँ जाना व्यर्थ क्यों है ? रुस्तम कह रहा था—"लड़को ! जब तुम बड़े हो जाओगे, तब तुम्हें पता चलेगा कि संसार में जिस काम से किसी लाभ की आशा नहीं है, वह व्यर्थ है । संसार में सब लोग वही काम करते हैं, जिसमें लाभ हो । केवल उन लोगों से मिलते हैं, जो लाभ पहुंचा सकें । केवल वे बातें सोचते हैं जो ,लाभदायक हों, बाकी सब काम, सब आनंद, सब बातें बेकार हैं ।"

अगले रविवार को सब कहीं बाहर जा रहे थे। हमें हुक्म मिला कि हम दिनभर घर की रखवाली करेंगे। छोटे नन्हे, नन्हे मियाँ टेलीफोन और मिलने वालों का ख़याल रखेंगे। मास्टर साहिब ने हमें घोड़े पर प्रस्ताव लिखने को कहा था।

मैं और रूफ़ी कमरे में कापियाँ लिये बैठे थे। एक कोने में नन्हा खेल रहा था। नन्हे मियाँ पड़ोस में बच्चों के साथ थे। रुस्तम पूछने लगा —"क्या लिख रहे हो!" हमने बताया। बोला—"यूँ भी कभी प्रस्ताव लिखे गये हैं। प्रस्ताव जिस पर लिखना है, उसे देख कर लिखो।—"मैं अभी घोड़ा लाता हूँ।" वह घोड़ा ले आया। अब इस पर सवार हो कर लिखो। तुम्हें घोड़े पर प्रस्ताव लिखना है।"

वह घोड़ा बहुत ऊँचा था। हम सीढ़ी पर खड़े थे। रुस्तम घोड़े को खींचकर दीवार के साथ लगाने का प्रयत्न कर रहा था। बड़ी कठिनाई से घोड़ा निकट आया। अभी रूफ़ी ने उस पर अपना पाँव रखा ही था कि वह आगे चल दिया। कई बार इस प्रकार हुआ। अन्त में निश्चय हुआ कि घोड़े पर सीढ़ी लगा कर चढ़ा जाय। रुस्तम बोला—"यदि तुमने घोड़े पर चढ़ कर प्रस्ताव लिखा, तो दोनों का प्रस्ताव एक सा होगा। मैं एक और घोड़ा लाता हूँ।" हमने कहा—"नहीं यही काफी है।" बड़ी कठिनाई से रूफ़ी घोड़े पर सवार हुए। वे इतने डरे हुए थे कि रुस्तम को भी साथ बैठना पड़ा। मैंने इनकार कर दिया। देखते ही देखते घोड़ा बुदक कर सरपट भागा। रुस्तम ने शायद चार या पाँच अत्यन्त श्रेष्ठ दर्जे की सुन्दर कलाबाजियाँ खाईं और रूफ़ी ने किसी चिर अभ्यासी नट की भाँति तमाशा दिखाया।

कपड़े झाड़ते हुए रूफ़ी रुस्तम से बोले, "घोड़े पर इन दो सवारियों का धन्यवाद।"

"दो सवारियाँ कैसी?"

"मेरी पहली और अन्तिम सवारी—।"

रसोइये को कहा गया था कि वह नन्हे का खयाल रखे। वह

प्रत्येक दस पन्द्रह मिनट के बाद रसोई-घर की खिड़की से सिर निकाल कर नन्हे की ओर देखे बिना चिल्लाता था—"नन्हे यूँ मत करो—सावधन नन्हे—जो यह किया तो।"

फिर हठात् नन्हे के रोने की आवाज आई। हम भागे भागे पहुँचे। "नन्हे को चोट क्योंकर लगी ?" हमने रसोइये से पूछा।

"वह सामने सीढ़ियाँ देखीं आपने ?"

"हाँ।"

"बस वह नन्हे ने नहीं देखीं।"

"हमने उसे चुप कराने के लिये बहुतेरे जतन किये। अन्त में रुस्तम ने परामर्श दिया कि इसे गाय का दूध पिलाया जाय। रसोइया दूध लाया। हमने उससे पूछा, "यह ताजा तो है ना ?"

"ताजा ?—कुछ घण्टे पहले यह हरी घास था।"

नन्हे ने चखा नहीं। पीने से इनकार कर दिया। मालूम हुआ कि वह दूध फीका था। रसोइये को शक्कर लाने को कहा गया। उसने घर छान मारा, परन्तु शक्कर न मिली। रुस्तम बोला—"अभी प्रातः पाँच सेर आई थी, रसोई घर में मैंने स्वयं देखी है।"

रसोइया मुसकुराया और बोला—"अहो, मुझे याद आया—" अन्दर गया। कुछ देर बाद खाली हाथ लौटा—"वहाँ तो नहीं मिली।"

"तो फिर कहाँ गई ?"

"किसी कुत्ते बिल्ली ने खा ली होगी", वह बोला।

अन्दर जाकर देखते हैं कि एक कुत्ता गहरी नींद के मजे लूट रहा है। उसे जगाने से पहले मैंने पूछा—"क्या कुत्ते शक्कर खाते हैं ?" और कुत्तों का पता नहीं, यह कुत्ता बेहद चटूरा है। मीठी चीज तो कभी नहीं छोड़ता। अवश्य इसी ने शक्कर खाई है। इसे तोल कर देख लीजिये।

कुत्ते को जगाया गया। तराजू मंगाई गई। उसे तोला गया। वह पूरे पाँच सेर था।

"शक्कर का वजन पूरा हो गया", रूफ़ी रसोइये से बोले, "अब कुत्ता कहाँ गया ?"

रसोइये से जब और कई प्रश्न पूछे गये, तो वह बोला—"मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ, जितना दिखाई देता हूँ।"

"काश कि तुम होते," रुस्तम बोला।

इतने में नन्हें मियाँ आ गये। नन्हें मियाँ स्वयं साढ़े चार वर्ष के थे और छोटे नन्हे से दो वर्ष के बड़े थे। हमने उनकी खुशामद की, छोटे नन्हे के साथ खेलो। उन्होंने बड़ी घृणा से नन्हे की ओर देखा और बोले—"इसके साथ ? ऊँह, यह तो बच्चा है।"

नन्हा खूब रो रहा था। अन्त में हमने तंग आकर रेडियो लगा दिया और उसकी आवाज को इतना ऊँचा कर दिया कि नन्हे की आवाज दब कर रह गई। कार्यालय से उस तोते को निकाल कर रेडियो के सामने बिठा दिया। सियाही से नन्हे मियाँ की दाढ़ी और मूछें बनाई गईं। बिल्लियों के चेहरे पर पाउडर, सुर्खी, लिपस्टिक लगाई गई। कुत्ते के गले में सफेद काली और बहुत बढ़िया टाई पहनाई गई। सिर पर हैट उढ़ाया गया। घोड़े के सिर पर कुल्ला रखकर पगड़ी बाँध दी गई।

फोन आया। रूफ़ी ने रिसीवर उठाया और नन्हे के मुंह के सामने कर दिया। नन्हा खूब मजे ले-लेकर रो रहा था। कुछ देर के बाद फिर फोन आया। रूफ़ी ने पूछा—"कौन साहिब बोल रहे हैं ?"

आवाज आई, "इनआमअली, इकरामअली, इलहामअली एण्ड कम्पनी-"

"ओह, आदाब अर्ज ! आदाब अर्ज और आदाब अर्ज !" और रसीवर रख दिया।

घर में खूब ऊधम मच गया। सन्दूकों और अलमारियों की तलाशी ली गई। बन्दूक चलाई गई। दो घड़े फूट गये।

फिर फोन किया गया—"कौन सा नम्बर चाहिये ?"

"कोई सा नम्बर दे दीजिये ?" रूफ़ी बोले।

"आप बताइये।"

"आप स्वयं कोई अच्छा नम्बर दे दीजिये।"

"नहीं आप।"

"बल्लाह आप।"

"आप बताते हैं या नहीं ?"

फ़ी ने डायल पर लिखा हुआ नम्बर पढ़ा—"मुझे यह नम्बर चाहिये।"

"यह तो आप का नम्बर है।"

"तो फिर मैं अपने आप से बातचीत करना चाहता हूँ।"

जब शाम को सब आये, तो हम बड़ी गंभीरता से प्रश्न निकाल रहे थे। नन्हा रोने के शग़ल से तंग आ कर सो चुका था। नन्हे मियाँ के सम्बन्ध में पूछा गया कि वे कहाँ हैं ? कुछ देर में सब के सामने से गुजरे वे कुछ चीजें चुराये लिये जा रहे थे। मुँह सफेद क्रीम से लिपा हुआ था उन्हें पकड़ा गया। मालूम हुआ, आप ने शुष्क क्रीम (Vanishing cream) लगाई है और आपका ख़याल है कि आप सब की दृष्टि से ओझल हो चुके हैं और आपको चोरी करते हुए कोई नहीं देख रहा।

सवेरे-सवेरे बाहर आहट हुई। हम ने आवाज़ दी। रसोइया था। "मुझे छः बजे जगा देना"—रूफ़ी बोले।

"छः तो बज गये।"

"तो मुझे जगा दो।"

हम बाहर निकले। चुपके से गाय का मोटा ताजा और बैल का-सा बछड़ा खोला। उस पर ज़ीन कसी गई। एक सींग पर साइकल का लैम्प लगाया गया और दूसरे पर घण्टी और हार्न फिट किये गये। हम दोनों सवार होकर सैर के लिये निकले। रूफ़ी ने दोनों सींग यूं पकड़ रखे थे, जैसे मोटर चला रहे हों। लैम्प जल रहा था। हम हार्न भी बजाते थे और घण्टी भी।

मास्टर साहिब बिल्कुल हमारे पड़ोस में रहते थे। उन्होंने मुर्गियाँ, बतखें, ख़रगोश और न जाने क्या-क्या अला-बला पाल रखी थीं। रास्ते में निश्चय हुआ कि आज दोपहर को छत पर चढ़ कर दर्पण की सहायता से उनके पक्षियों और चौपायों पर सूर्य की किरणें फेंकी जायँ। दोपहर को रूफ़ी अन्दर से बड़ा सा दर्पण उठा लाये। हमने किरणें फेंकी। मुर्गियाँ, बतखें उड़कर सड़क पर चली गईं। कुछ हमारे यहाँ आ गईं। ख़रगोश अन्दर जा छिपे और फिर रूफ़ी के हाथ से दर्पण जो फिसला, तो चूर-चूर हो गया। हमने रुस्तम को बताया। वह बोला, "गज़ब हो गया। यह दर्पण तो बहुत पुराना था। कई पीढ़ियों से आप के खानदान में चला आता था।" हम बहुत डरे। वह बोला—"अच्छा मैं अवसर पा कर साहिब से कह दूँगा कि वह दर्पण, जो पीढ़ी के बाद पीढ़ी से आप के यहाँ चला आता था—।"

"हाँ हाँ, उसे क्या हो गया?" हमने बेसब्री से पूछा।

"उसे इस पीढ़ी ने तोड़ दिया है।"

हम मिन्नतें करने लग गये कि किसी को मत बताना। हम दूसरा खरीद लायेंगे। मुसीबत यह थी कि उन दिनों हम सर्वथा गरीब थे। मेरी साइकल में इतने पंकचर लगे हुए थे कि साइकल वाला तंग आ चुका था। अंतिम बार जब मैं एक और पंकचर लगवाने गया, तो उसने मुझे ट्यूब दिखाई। पंकचरों पर पंकचर और उन पर और पंकचर लगे हुए थे। वह बोला—"अब मैं केवल यह कर सकता हूँ कि इस ट्यूब पर एक नई ट्यूब चढ़ा दूँ। बस—"

इधर रूफ़ी के पास कुछ नहीं था। हम ने रुस्तम से उधार के लिये कहा। वह बोला—"मुझे तो पड़ोसियों ने कंगाल कर रखा है। सब कुछ उधार ले जाते हैं। कई बार जो चीजें मैं स्वयं उधार लाता हूं, वे उन्हें भी उधार ले जाते हैं। मेरा वेतन, मेरे बर्तन, वस्त्र, सन्दूक सब कुछ उन के यहाँ रहता है। उनके यहाँ मेरी इतनी चीजें हैं कि अपने घर की अपेक्षा उनके यहां मेरा अधिक मन लगता है। यहाँ तक कि एक दिन वे

मेरे नकली दान्त और ऐनक भी उधार ले गये थे।

हम बड़े घबराये। अन्त में निश्चय हुआ कि रसोइये से रुपये माँगे जायें और माँगते समय उसे रसोइया न कहा जाय, प्रत्युत खानसामाँ कहा जाय। कठिनाई से उसने वचन दिया कि वह किसी से उधार लेकर हमें कल सौ रुपये दे देगा। और हम उसे ग्यारह बजे बाजार में मिलेंगे। हम स्कूल से भाग कर बाजार पहुंचे। देर तक प्रतीक्षा करने पर भी वह हमें न मिला। इधर यह डर था कि कोई बाजार में देख न ले। अन्त में हम एक दुकान में जा घुसे और यूँ ही कीमतें पूछने लगे। रूफ़ी ने एक मफलर की कीमत पूछी। दुकानदार बोला—"पचास रुपये।"

"लाहौल-वला-कुव्वता—और इस कलम की क्या कीमत है ?"

"दो लाहौल-वला-कुव्वतें।"

"मतलब ?"

"मतलब, सौ रुपये।"

"अच्छा, तो कोटों का कपड़ा तो दिखाइये।

हम कपड़े भी देख रहे थे और सड़क की ओर भी। थोड़ी देर में हमने सारे थान उलट-पुलट कर रख दिये। दूकानदार बोला—"तो कौन सा कपड़ा पसन्द आया आप को ?"

"श्रीमान्, क्षमा कीजिये। हमें कपड़ा नहीं खरीदना था। वास्तव में हम अपने रसोइये की तलाश में हैं।"

"तो यदि आपका यह खयाल है कि आपका रसोइया इन दो शेष रह गये थानों में लिपटा हुआ है, तो मैं वे भी दिखाए देता हूं।"

वह शेष के थान लेने मुड़ा और हम वहां से भागे। अन्त में हमें रसोइया मिल ही गया।

"इतनी देर लगा दी ?—पता भी है अब क्या बजा है—?" हमने उससे शिकायत के तौर पर कहा।

"मैं विभिन्न व्यक्तियों से समय पूछता रहा हूं। कोई कुछ बताता है, कोई कुछ—"

"वह सामने देखो—।" क्लाक पर पूरे बारह बजे हुए थे।

"अरे," वह चौंक कर बोला—'यह क्लाक की दूसरी सुई कहाँ गई?'

हमने दर्पण खरीदा और वापसी पर वह बोला—"मैं डाक का बहाना करके आया हूँ। डाकखाने होकर चलेंगे और हम रास्ते भर डरते रहे कि कहीं कोई और दर्पण को देख न ले।

"कोई डाक थी?" चपरासी ने पूछा।

"डाक तो नहीं थी, केवल एक पत्र था," वह बोला।

दर्पण रुस्तम को दिखाया गया। उसने हमें बताया कि उसके सामने यही दर्पण दो बार टूट चुका है। दोनों बार नया खरीदा गया, परन्तु शुक्र है कि वह दर्पण, जो पीढ़ी के बाद पीढ़ी चला आ रहा था, बिल्कुल सही-सलामत है।

रात को हमने देखा कि रूफ़ी के पिता दफ्तर में काम कर रहे हैं। उनकी डीपार्टमेंटल परीक्षाएं हो रही थीं। रूफ़ी अन्दर गये। सलाम किया और बोले—"सुनाइये पिता जी परचे कैसे हो रहे हैं?"

"अच्छे हो रहे हैं, धन्यवाद।"

"परीक्षा कठिन तो नहीं लग रही?"

"नहीं, आसान है," वे मुस्कराते हुए बोले।

"फिर भी आप इतना परिश्रम न किया करें। इतनी देर जागा भी मत करें। अन्यथा स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ेगा और अपनी ऐनक संभाल कर रखा करें। नौकर प्रायः लगा लेते हैं।"

रूफ़ी के पिता की ऐनक कुछ ऐसी थी कि जो उसे लगाता, कुछ कदम चलकर धड़ाम से गिरता। हमने कई बार परीक्षण किया था।

+ + +

रूफ़ी के यहाँ उनके कई सम्बन्धी मिलने आए। उनके साथ अनेक बच्चे थे। अत्यन्त नटखट और शरारती बच्चे।

रूफ़ी की माता ने नन्हे मियाँ से कहा—"नन्हे दादी जान को प्यार करो।"

"माता जी, मेरा अपराध ?" उन्होंने ठिनक कर कहा।

"अच्छा इन्हें अपना पाठ पढ़ कर सुनाओ या चलो कोई कहावत ही सुना दो।"

"कल का काम आज पर मत छोड़ो—" नन्हे मियाँ छाती तान कर बोले।

"ग़लत है—सोचकर बताओ," उन की माता ने डाँटा।

"आज का काम परसों पर मत छोड़ो।"

"चलो रहने दो," उनकी दादीजान बोलीं—"अच्छा यह तो बताओ, प्रातः कितने बजे जागते हो ?"

'जब सब जागते हैं।"

"बच्चों को तो मुर्ग़ की अज़ान (कुकड़ू कूँ) के साथ उठना चाहिये।"

"जी हमारे यहाँ मुर्ग़ है ही नहीं।"

"तो सूर्य की पहली किरण के साथ उठना चाहिये।"

"जिस कमरे में हम सोते हैं, उसका रुख़ पश्चिम की ओर है।"

बच्चों ने हमें परेशान कर दिया। एक पूछता था; भाई जान चिड़ियाघर को चिड़ियाघर क्यों कहते हैं ? दूसरा यह जानना चाहता था। कि ये चीते और शेर आदि सर्कस से पहले क्या किया करते थे ? एक का गुब्बारा उड़ गया। वे यह पूछ रहे थे कि पृथ्वी के आकर्षण ने गुब्बारे को रोका क्यों नहीं ? पृथ्वी के आकर्षण से उनका विश्वास उठ चला था।

एक बच्चे ने बताया कि उसने एक व्यक्ति देखा था, जिसका आधा चेहरा सर्वथा काला था।

"यह कैसे हो सकता है ?" सूफ़ी बोले।

"उसका शेष आधा चेहरा भी काला था।"

दूसरा बोला—"हमारे मास्टर साहिब कभी भी छतरी का प्रयोग नहीं करते।"

"तो फिर क्या करते हैं ?"

"बस भीग जाते हैं ।"

तीसरा भागा-भागा-आया—"अम्मी जान, मैंने बाग में खरगोश देखा है।"

"वहम होगा।"

"अच्छा तो क्या वहम की एक सफेद पूंछ और दो लम्बे-लम्बे कान होते हैं ?"

"हम तंग आ गये। अजीब नटखट गुस्ताख़ बच्चों से पाला पड़ा था। रूफ़ी और मैं उठे।

"कहाँ जा रहे हो ?"

"बाग में फल तोड़ने।"

"परन्तु फल तो अभी कच्चे हैं। अभी कल तो देखे थे।"

"शायद कुछ पक गये हों।"

"बैठे रहो, फिर कभी देख लेना—" और हमें बैठना पड़ा।

एक बुजुर्ग फरमा रहे थे, "जब मैं छोटा सा था, तो इतना कृश और दुर्बल था कि मेरा भार कुल चार पौण्ड था। मुझे संसार भर के रोगों ने घेर रखा था।"

"तो क्या आप जिन्दा रहे थे ?" एक नन्हा बोला।

एक महिला कह रही थी, "इस समय हिन्दुस्तान में हम जाग रहे हैं, परन्तु अमेरिका के कुछ भागों के लोग सो रहे होंगे।"

"आलसी कहीं के—" एक और नन्हे ने बात काटी।

"आइसक्रीम जल्दी से खालो, अन्यथा ठण्डी हो जायगी ?" एक ओर से आवाज आई।

"यह काफ़ी तो जली हुई है—" एक बच्चे ने नारा लगाया। उसे बताया गया कि काफी का स्वाद ऐसा ही होता है, परन्तु वह न माना और अपने हठ पर अड़ा रहा कि काफी जली हुई है।

दीदी जान नन्हे मियाँ से पूछ रही थीं, "क्यों नन्हे यह सड़क कहाँ

जाती है ?"

"जो जाती-वाती तो कहीं नहीं, प्रतिदिन प्रात: मुझे यहीं मिलती है। यदि रात को कहीं चली जाती हो, तो पता नहीं।"

"परन्तु यह वही सड़क तो है, जो जरनैली सड़क से जा मिलती है और पिशावर जाती है।"

"तो पिशावर से वापस कौन सी सड़क आती है ?" एक नन्हा बोला।

"हमारे मास्टर साहिब की वर्ष गाँठ है, उन्हें क्या उपहार दिया जाय ?" आवाज़ आई।

"एक पुस्तक दे दो।"

"परन्तु उनके पास एक पुस्तक है।"

दादीजान ने फिर नन्हे से प्रश्न किया, "वे सामने जो जानवर चर रहे हैं, कितने हैं ?"

"बाईस !" कुछ देर के बाद उत्तर मिला।

"शाबाश—इतनी जल्दी तुमने क्योंकर गिन लिये—?"

"बिल्कुल आसान है। पहले जानवरों की टाँगें गिन लीं, फिर चार पर भाग कर दिया।"

एक महानुभाव, जो शिकारी थे, अपनी आप बीती सुना रहे थे। वे बता रहे थे कि किस प्रकार वे जंगल में छिपते फिर रहे थे और शेर उनका पीछा कर रहा था। बच्चे तरह-तरह के प्रश्न पूछ रहे थे। शेर का रंग कैसा था ? आपकी शेर से शत्रुता थी क्या ? शेर मोटा था या दुबला ? आपने शेर की कमर पर लट्ठ क्यों नहीं मारा ? क्या आप डरपोक थे, जो शेर से डर रहे थे ? वे थोड़ी-सी बात करते और सब चिल्लाकर पूछते, "फिर क्या हुआ ?" और साथ ही बेतुके प्रश्नों की बौछाड़ आरम्भ हो जाती। वे तंग आ चुके थे। एक बार बच्चों ने फिर पूछा—"कि फिर क्या हुआ ?"

"फिर क्या होना था", वे अपने बाल नोच कर बोले—"फिर शेर

ने मुझे खा लिया।"

और बच्चों ने तालियाँ बजाईं। हिप हिप हुर्रा किया। एक नन्हा अपना ढोल उठा लाया और साथ ही लकड़ी का आधा घोड़ा, जिसे आरी से काटा गया था। घोड़े का नाम लुई साढ़े तीन था। उन्होंने कारण बताया कि पहले उन्होंने अपने किसी मित्र की साझादारी में खरीदा था, तब उसका नाम लुई सप्तम था। दोनों मित्रों की लड़ाई हुई, तो घोड़े को आरी से आधा-आधा बाँटा गया। अतः उसका नाम लुई साढ़े तीन रख दिया गया।

हम फिर उठे। "कहाँ जा रहे हो?"

"जी बाग में—शायद अब फल पक गये हों।"

परन्तु हमें फिर बिठा लिया गया। दूसरे कमरे से एक बच्चे ने विरोध का नारा लगाया। हम भाग कर पहुँचे। दो बच्चे लड़ रहे थे। बड़ा छोटे की खूब सेवा कर रहा था। कठिनाई से दोनों को विलग किया। दादी जान के सामने मुकद्दमा पेश हुआ। लड़ाई का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जा रहा था। छोटा बच्चा डींगें मार रहा था कि मैंने यह किया, मैंने वह किया। वह कह रहा था—"मैंने इसको पकड़ कर अपने ऊपर गिरा लिया और अपनी नाक उसके दांतों में दबा ली। फिर मैंने उसकी कुहनी अपनी पसलियों में चुभो दी और धड़ाम से उसका मुक्का अपनी कमर में दे मारा। फिर जोर से उसका थप्पड़ अपने मुंह पर मारा। फिर मैंने उसकी ठोकर अपने घुटने में लगाई। तो बस—।"

हम फल तोड़ने के बहाने कठिनाई से वहाँ से निकल सके। बाग में मैं और रूफ़ी देर तक सोचते रहे कि संसार में कैसे कैसे मूर्ख और बेहूदा बच्चे बसते हैं।

\+ \+ \+

रूफ़ी ने कमरे के दरवाजों पर अन्दर की ओर स्वागतम् लगाया था, इस तरह कि जो व्यक्ति कमरे में बैठा हो, उसे प्रत्येक समय दिखाई

देता रहे, यह मास्टर साहिब के लिये था। रूफ़ी के लिये नई रजाई तैयार हुई थी। उन्हें रजाई के फूल बेलें बहुत ही पसन्द थीं, इसलिये कि उन्हें देख कर रूफ़ी को मुगल आर्ट याद आ जाता था। अभी अच्छी खासी गर्मियाँ थीं, परन्तु वे रात को पंखा चला कर रजाई ओढ़ते थे।

एक और परीक्षा आ रही थी। हमें अतिरिक्त काम करने को कहा गया। रुस्तम पूछने लगा, "इतने परेशान क्यों हो ?"

रूफी बोले, "क्या बताएँ, सुब्ह काम, शाम को काम, काम, काम, तंग आ गये हैं।"

"इतना काम कब से आरम्भ किया ?"

"कल से आरम्भ करेंगे।"

रुस्तम पढ़ा लिखा था। उसने वचन दिया कि वह हमारा हाथ बटायेगा और हिसाब के सवाल निकाल दिया करेगा। इसके बाद देर तक बड़ों पर आलोचना होती रही कि ये मजे करते हैं। इन्हें कोई कुछ नहीं कहता, न इन्हें सायँ को ट्यूशन की मुसीबत है, न प्रातः उठने का बन्धन। इनकी परख, इनकी परीक्षा, इनके कड़े दिन गुजर चुके हैं इत्यादि।

हमारी परीक्षा हुई। हमें कुछ और बताया गया था, परन्तु प्रश्न कुछ और ही आये। अस्तु हम कुछ और ही लिख आये। बस फेल होते बचे। प्रत्येक व्यक्ति ने हमें यथा शक्ति डाँटा। रसोइये ने सहानुभूति प्रकट करते हुए पूछा—"सुना है आप की परीक्षा इतनी अच्छी नहीं हुई। क्या बात हुई ?"

रूफ़ी बोले, "बात यह हुई कि मुझे पता नहीं था कि सेरा-नवीदा पर्वत, मिसरुपी नदी और टम्बकटू कहाँ हैं।"

"मैं तो सदा यही कहा करता हूँ कि अपनी चीजें संभाल कर रखो।"

मास्टर साहिब हमारे पर्चे लेकर आए। पहले उन्होंने शिक्षा के महत्व और परिश्रम के लाभ पर छोटा सा भाषण दिया। फिर गलतियाँ गिनवानी आरम्भ कर दीं—। हमारा भूगोल बहुत कमज़ोर है। यह

देखो इस नक्शे में यह रेलवे लाईन इस जंकशन से आगे चलते चलते एक दम नदी बन जाती है और बंगाल खाड़ी में गिरती है। यह छोटी-सी झील ठीक समुद्र के मध्य में अवस्थित है। और इस नदी से एक सड़क मिलती है, जो वापस पहाड़ों की ओर लौट जाती है। तुमने अब तक एटलिस नहीं खरीदी।"

"जी, नहीं।"

"मैं महीनों से चिल्लाता रहा हूँ, आखिर तुम एटलिस क्यों नहीं खरीदते ?"

"जी दुनिया के राजनीतिक हालात जरा ठीक हो लें, फिर खरीद लेंगे।"

"और यह नूह के तूफान के सम्बन्ध में तुमने क्या ऊटपटांग बातें लिखी हैं। तुमने लिखा है कि वह नाव किसी पर्वत पर ठहरी ही नहीं।"

"जनाब ! पर्वतों पर भी कभी नावें ठहरी हैं ?"

"परन्तु उन दिनों बाढ़ आई हुई थी। चारों ओर पानी ही पानी था। अच्छा ! तुम उस नाव पर होते, तो उसे कहाँ ले जाते ?"

"जी, मैं उसे किसी अच्छी सी बन्दरगाह में ले जाता और—"

"और—फिर—?"

"फिर उन समस्त जानवरों को निकाल कर एक सर्कस खोल लेता।"

"ऐ है बाढ़ थी—प्रलय थी चारों ओर।"

—मास्टर साहिब सिर हिला कर बोले—"और यह लेख इतना लम्बा क्यों है ? इसे केवल तीन पृष्ठों का होना चाहिये था।"

फ़ी को लम्बे-लम्बे प्रस्ताव लिखने का बहुत चाव था, यद्यपि वे होते थे सर्वथा यूँ ही से। तीन पृष्ठों के बन्धन की उन्होंने यूँ उपेक्षा की कि पहले पृष्ठ पर नम्बर एक लिखा, दूसरे पर नम्बर दो। इसके पश्चात् कई पृष्ठों को इकट्ठा पिन कर दिया और उस पर नम्बर तीन लिख दिया।

"और फिर यह प्रस्ताव अच्छा भी नहीं है।"

"जनाब, आप यह नहीं कह सकते कि यह प्रस्ताव अच्छा नहीं है—यह कह सकते हैं कि आप को पसन्द नहीं आया।"

"अच्छा चलो यूँही सही कि मुझे पसन्द नहीं आया।—और यह इतिहास के पत्र में तुम ने आविष्कार किया, आविष्कार किया, क्यों बार-बार लिखा है। तुमने लिखा है कि शाहजहाँ ने ताजमहल का आविष्कार किया। जहाँगीर ने जहाँगीर के मकबरा का अविष्कार किया। कुतब साहिब ने कुतब साहिब की लाट का आविष्कार किया।"

"जी यह इसलिए कि पहले इन चीजों का किसी को पता नहीं था।"

"अनुसंधान किया", रूफ़ी ने गर्व से कहा।

"नहीं अनुसन्धान भी नहीं किया उनका, उन्हें बनाया", मास्टर साहिब बोले। "सच बताओ स्कूल का काम कौन किया करता है, ईमान से—?"

"जी रुस्तम करता है।"

"अकेला ?"

"जी नहीं हम उसकी सहायता किया करते हैं।

"तुम दोनों को अपना लेख सुन्दर बनाना चाहिए।"

"फिर आप हमारी इमला में गलतियाँ निकाला करेंगे।"

मास्टर साहब शायद कोई शुभ समाचार सुन कर आये थे। हमसे बिल्कुल खफ़ा नहीं हुए। चलते समय बोले—"इतनी गलतियाँ मैंने किसी और के पत्रों में नहीं देखीं।"

"जी गलतियाँ तो हम सब करते हैं। इसी लिए तो पेन्सिल के साथ रबड़ लगाई गई है," रूफ़ी समादर पूर्वक बोले।

+ + +

चपड़ासी बीमार पड़ गया। उसकी ड्यूटी हमें दे दी गई। टेलीफोन और मिलने वालों का खयाल रखना और इस मूर्ख तोते की देख-भाल करना। उसकी बीमारी भी विचित्र सी थी। प्रातः कहता, नमोनिया हो गया। सायं को कहता नहीं सरसाम था। कभी कहता कि

बावला कुत्ता काट गया था। इसे सिद्ध करने के लिये उस ने कुत्ते की भौंकने की नक़ल भी उतारी। फिर रुस्तम ने उसे बताया कि इस रोग में रोगी मर जाता है, परन्तु भौंकता कदापि नहीं। अतः उसने रोग तुरन्त बदल लिया। यह रोग तपेदिक, मालिया-खौलिया, रक्त के दबाव, ज़ुकाम आदि से होता हुआ भूत प्रेत के चिपटने पर आकर रुका। अन्त में उसने निश्चय कर लिया कि उस पर किसी भूत की छाया है।

सायंकाल हम रसोई घर में बैठे थे। रसोइया खाना पका रहा था। रुस्तम पास बैठा था। भूतों की कहानियाँ हो रही थीं।

"रात तुम सोते हुए शोर मचा रहे थे, "मैंने रूफ़ी से कहा।

"मैं शोर मचाते हुए कुत्तों को रात भर स्वप्न में देखता रहा, तुमने वह शोर सुना होगा।"

"भूत तो मैंने देखा था पिछले वर्ष," रसोइया बोला।

"कैसा था ?"

"एक बहुत बड़े गधे जैसा।"

"तुम अपनी छाया से डर गये होगे," रुस्तम बोला।

"नहीं सचमुच का भूत था। उसने मेरा पीछा किया। मैंने भागकर दरवाजा बन्द कर लिया और भूत दीवार में से निकल आया।"

"फिर तुमने क्या किया ?"

"मैं दूसरी दीवार में से निकल गया।"

"क्या हाँक रहे हो," रुस्तम बोला, "ऐसा कैसे हो सकता है ?"

"ऐसा हुआ था। परन्तु मैं उस समय स्वप्न देख रहा था। यह स्वप्न सुना रहा हूँ।"

"मैं अपनी आप बीती सुनाता हूँ," रुस्तम बोला। "मैं उन दिनों अपने खेत में काम किया करता था। खेत के रास्ते में क़ब्रिस्तान भी पड़ता था और श्मशान भी। एक बार क्या हुआ कि मैं रात को खेत में पानी देने जा रहा था कि रास्ते में मेरे पीछे एक भूत हो लिया। देखने में बिल्कुल मानवी रूप में था। उसने मुझे कुछ नहीं कहा। बस मेरी

नकलें उतारता रहा । मैं डर से काँपने लगा । मैंने देखा, वह भी काँप रहा है । मेरी घिग्घी बन्धी, उसकी घिग्घी भी बंध गई । एक पीर वहाँ रहते थे । मैं अगले दिन उनके पास गया । उन्होंने पहले तो तावीज़ लिखा, फिर कुछ सोचकर बोले—"तुम इस मरदूद से काम क्यों नहीं लेते । अतः उनके आदेश के अनुसार में अगले दिन तक हल और दो बैल फ़ालतू ले गया । रात को वह आया । मैंने अपना हल उठाया, बैल जोते । उसने तुरन्त दूसरा हल लिया और बैल जोत लिये । मैंने हल चलाना आरम्भ कर दिया । उसने भी यही किया । सारांश, रात भर हम दोनों ने खूब हल चलाया । प्रातः ही वह वापस चला गया । महीनों मैंने उससे हल चलवाया । फ़स्ल कटवाई, अनाज निकलवाया । बोरियों में बन्द करवाया । फिर हठात् न जाने उसे क्या हो गया । शायद किसी और भूत ने उसे पट्टी पढ़ा दी या कुछ और हो गया । उसके तेवर बदल गये । वह मेरी ओर घूर-घूर कर देखता । मेरे निकट आने का प्रयत्न करता । मैं पीर साहिब के पास गया । उन्होंने पहले तो तावीज लिखा । फिर कुछ सोच कर तावीज वापस ले लिया और मुझे एक युक्ति बताई । उस पर मैंने अमलकिया । शामको मैंने दो गढ़े खोदे । एक में खूब अंगारे दहकाये, दूसरा यूँही रहने दिया । दोनो में एक-एक ईंट दबा दी, ऊपर से राख छिड़क दी । रात को वह आया । मैंने उससे खूब काम लिया । फिर मैंने अंगड़ाई ली । उसने भी अंगड़ाई ली । मैं बोला, "भाई अब तो आराम करना चाहिये ।" वह इसी तरह बोला । "भाई अब तो आराम करना चाहिये । मैंने राख हटा कर ठण्डी ईंट निकाली औरउस पर बैठ गया । उसने भी इसी तरह किया । दहकती हुई ईंट पर बैठ कर उसने एक गगन भेदी नारा लगाया और जो वहाँ से अन्तर्धान हुआ हो तो फिर कभी नहीं आया ।"

रसोइया बोला —"जहां मैं पहले नौकर था, वहाँ हवेली में एक भूत रहा करता था । उससे कोई डरता ही न था । बच्चे तक उसकी हँसी उड़ाते । जब वह डराने का प्रयत्न करता, तो उसे झिड़क दिया

जाता कि क्यों बेकार शोर मचा रहे हो। बेकार अपना समय नष्ट कर रहे हो और हमारा भी। कभी-कभी उसे चाय पीने का निमन्त्रण दिया जाता। भूत रात गये मेरे पास आता और अपनी इस दुर्गति पर आठ आठ आँसू रोया करता। सबसे अधिक दु:ख उसे इस बात का था कि नियमानुसार सब को उससे डरना चाहिये था और भूत होने के नाते उसे अत्यन्त ज़ालिम और पाषाण-हृदय होना चाहिये था। उसने कई बार आत्म-हत्या का प्रयत्न भी किया। अन्त में मैंने एक दिन सुना कि बेचारा वहीं शर्म के समुद्र में डूब कर मर गया।"

"एक भूत हमारे चपड़ासी पर भी तो सवार है।"

"यह फ़र्ज़ी बीमार है," रुस्तम बोला—"इसका रोग फ़र्ज़ी है। इस लिये इसका इलाज भी फ़र्ज़ी होना चाहिये। जब सब चले जाते हैं, तो भला चंगा हो जाता है। सारी औषधियाँ कहीं इधर-उधर फेंक देता है और बहुत सवेरे उठ कर व्यायाम करता है, ताकि सारा दिन लेटे रहने से कहीं स्वास्थ्य खराब न हो जाय।"

"तो क्या यह झूठ बोलता है?" हम हैरान हो गये।

"बिल्कुल! लड़को! संसार में झूठ एक महत्त्वपूर्ण वस्तु है। इसके बिना गुजारा कठिन है। अब तुम झूठ बोलते हो तो तुम्हें थोड़ा-सा खेद होता है। धीरे-धीरे यह खेद उड़नछू हो जायगा और तुम बेधड़क खुल्लमखुला झूठ बोलना आरंभ कर दोगे, तो शाम तक झूठ ही झूठ बोलोगे। पशुओं से झूठ बोलोगे, मनुष्यों से झूठ बोलोगे, यहाँ तक कि खुदा से भी झूठ बोलने की कोशिश करोगे।"

कुछ देर में डाक्टर साहिब की कार आ गई। वे रोगी को देखने आए थे। हमने तहैय्या कर लिया कि अब रोगी को स्वस्थ करवा के ही दम लेंगे। हमने डाक्टर साहब को सलाम किया। रूफ़ी बोले—"जनाब! रोगी का स्वास्थ्य इतना खराब है कि वह आप से मिलना नहीं चाहता।"

"आज तुम्हारा टैम्परेचर कितना था?" डाक्टर ने पूछा।

"एक सौ के लग-भग था।"

'इतना अधिक ?"

"कहीं तुमने थर्मामीटर से चाय में शक्कर तो नहीं मिलाई ?" रूफ़ी बोले।

"तुमने आदेश के अनुसार दवाई पी थी ?" डाक्टर साहिब ने प्रश्न किया।

"जनाब ! इन्होंने बोतल पर लिखे हुए आदेश का पूरा-पूरा पालन किया है कि कार्क को दृढ़ता से बन्द रखो," रूफी बोले।

जब डाक्टर साहिब नुस्खा लिख रहे थे, तो रूफ़ी बड़ी गंभीरता से मुँह बना कर कहने लगे—"जनाब ! यदि आवकाश हो, तो मुझे भी देखिये—मैं सदा सुस्त रहता हूं, आज तक बीमार नहीं हुआ। यहाँ तक कि मुझे साधारण सा नजला जुकाम भी नहीं हुआ। कई बार तो मैं बहुत डरता हूं कि कहीं मेरे नाड़ीमण्डल में कोई खराबी तो नहीं है ?"

हम बहुत सवेरे उठे। खिड़की से झांक कर देखते हैं, तो रोगी महोदय कमरे में व्यायाम कर रहे हैं, छलाँगें लगाई जा रही हैं। डण्ड पेले जा रहे हैं। हमने अन्दर जाकर उनसे साफ-साफ कह दिया कि मौलाना या तो आज प्रातः से अपना टेलीफोन, वह अयोग्य तोता और मिलने वालों को संभालो, अन्यथा हम सबसे कह देंगे।" आदमी समझदार था, तुरन्त स्वस्थ हो गया।

+ + +

अगले सप्ताह मास्टर साहिब के यहाँ चोरी हो गई। उनका परिवार कुछ दिनों से कहीं गया हुआ था। उस रात वे स्वयं भी कहीं आमन्त्रित थे। घर खाली था। कोई अवसर पाकर बिल्कुल सफाई कर गया। प्रातः हम उनके मकान पर गये, जो कि हमारे पड़ोस में था। रूफी ने बड़े ध्यान से सब कुछ देखा और बोले—"घबराने की कोई बात नहीं। सौभाग्य से हम इन दिनों सुराग-रसानी अथवा जासूसी की कहानियाँ पढ़ रहे हैं।"

हम दोनों ने परामर्श किया। मास्टर साहिब से बिल्कुल थानेदार के अन्दाज से प्रश्न पूछें। पाँव के निशान देखे। मकान को इधर-उधर सूंघा। परिणाम यह निकला कि एक काले रंग की बिल्ली, जो बरआमदे में बंधी हुई थी। पकड़ ली गई। यह बिल्ली मौके पर मौजूद थी। उसने चोर को देखा था। बिल्लियाँ समझदार होती हैं। उनकी आँखें रात को चमकती भी हैं। वे अन्धेरे में भली प्रकार देख सकती होंगी। यह चोर पहचान सकती है। यदि इसने चोर को दुबारा देखा, तो गुर्रायेगी, पञ्जा मारेगी या किसी और प्रकार से क्रोध प्रकट करेगी। हम उसे आस-पास सड़क पर साथ लिये फिरेंगे, क्योंकि चोर भी निकट ही रहता होगा। यह किसी भेदी का काम था।

सायं हम झील के किनारे बैठे मछलियां पकड़ रहे थे। वास्तव में हमने काँटों में मछलियाँ पहले से लगाई हुई थीं। पानी में डोर थी और डोर के सिरे पर मछली। यह रुस्तम के लिये किया था। आज उसे मछलियाँ पकड़ कर दिखायंगे। उसे झील के सम्बन्ध में संदेह है। वह हमें लेने आया। चोरी की बातें आरंभ हो गईं। हमारा खयाल था कि लोग केवल दूसरों को परेशान करने के लिये चोरी करते हैं और यह एक प्रकार का मजाक है। वह हमें बताने लगा कि लोग इसलिये चोरी नहीं करते, प्रत्युत दूसरे की चीजों पर कब्जा जमाने के लिये करते हैं और फिर उनकी चीजों को कभी वापस नहीं लौटाते। और यह मनुष्य की तृष्णा है, जो चोरी करने के लिये उकसाती है। कई लोग बड़ी-बड़ी चोरियां भी करते हैं। मनुष्य को चुरा लेते हैं। भूमि के बड़े बड़े भागों, महाद्वीपों को चुरा लेते हैं। वहां के रहने वालों के हृदय और मस्तिष्क, उनके विचार चुरा लेते हैं।

इतने में धड़प-सी आवाज आई।

"आवाज सुनी तुमने ?" हम दोनों चिल्ला कर बोले। "यह मछली थी।"

"फिर मैंने झटके के साथ डोर खींची और मछली बाहर निकाल

ली। रूफ़ी ने भी यही किया।

'तुम देखते जाओ, कुछ देर में यहाँ मछलियों के ढेर लग जायेंगे, तब तो तुम्हारा संदेह दूर हो जायगा," हमने कहा।

फिर हम दूसरे किनारे की बातें करने लगे कि जब कभी हम वहाँ गये, तो रुस्तम को भी साथ ले जायेंगे। वह बैठा मुस्कराता रहा।

कुछ समय तक नीरवता छाई रही। फिर वह कहने लगा—"लड़को यह आत्म-प्रवंचना की नीली झील और दूसरे किनारे आयु भर पीछा नहीं छोड़ते। हम जीवन भर अपने आप को धोखा देने के प्रयत्न में रहते हैं, यह विश्वास दिलाने के प्रयत्न में कि जो चीज यहाँ नहीं है, वह वहाँ है। आज तुमने दो मरी हुई मछलियाँ अपने काँटों में इसलिये लगाई थीं कि तुम्हें अब तक विश्वास है कि दुनिया झूठी है और तुम्हारी कल्पना सच्ची है। दूसरे किनारे के सम्बन्ध में, तुमने कैसे सुहाने विचार दिल में बसा रखे हैं। मैं वहाँ कई बार गया हूं। वह किनारा बिल्कुल उजाड़ है। इस किनारे से भी बुरा है। मेरी मानो, तुम उस ओर कभी मत जाना, नहीं तो तुम्हें अफ़सोस होगा। दूसरा किनारा बस दूर ही से अच्छा लगता है—"

\+ \+ \+

बारी-बारी बिल्ली पर हमारी ड्यूटी थी। प्रातः उठ कर देखता हूँ, तो बिल्ली ग़ायब है। बहुतेरा ढूंढा, परन्तु न मिली। रूफ़ी सो रहे थे। मैं बाहर भागा कि कहीं ऐसी ही काली बिल्ली मिल जाय, तो पकड़ लाऊं। यूं तो बिल्लियाँ हमारे यहाँ भी बहुत थीं, परन्तु उनमें काली एक भी नहीं थी। मैं दुआ माँग रहा था कि या इलाही! कहीं से एक काली बिल्ली भेज। लोग कहते हैं कि बच्चों की दुआएँ बहुत शीघ्र स्वीकृत होती हैं। लोग सच कहते हैं। मैंने सड़क पर एक व्यक्ति देखा, जिसके हाथ में एक थैला था और थैले में म्याऊं-म्याऊं हो रही थी। उससे पूछा। वह बोला, इसमें कोई पन्द्रह-सोलह बिल्लियाँ बन्द हैं। मैं इनसे तंग आ चुका हूँ और इन्हें कहीं दूर छोड़ने

जा रहा हूँ। मैंने उससे कहा कि वह काली बिल्ली मुझे निकाल दे, तो उसकी भलाई आयु भर नहीं भूलूँगा। उसने थैले में हाथ डाला। पहली बिल्ली सफेद थी। उसे वापस फेंक दिया, दूसरी चितकबरी, तीसरी भूरी, चौथी बादामी। इधर मेरा बुरा हाल था। किसी काली बिल्ली के दीदार के लिये आँखें तड़प रही थीं। खुदा-खुदा करके काली बिल्ली निकली और मैं लेकर भागा। रूफ़ी के जागने से पहले एक काली बिल्ली वहाँ बन्धी हुई थी।

"यह बिल्ली दो तीन दिनों में कितनी मोटी हो गई है," वे बोले। सचमुच यह नई बिल्ली पहली बिल्ली से बड़ी थी। तीसरी रात यह बिल्ली भाग गई। दुर्भाग्य से उस रात भी मेरी ड्यूटी थी। मैं बड़ा घबराया, यदि रूफ़ी को पता चल गया, तो जान खा जायँगे। मुझे प्रातः समय तक नींद न आई। बहुत सवेरे ही पड़ोस में गया। उनके यहाँ एक काली बिल्ली रहती थी। वह उनसे उधार माँगी। पहले तो वे विस्मित हुए। संभवतः पहली बार कोई बिल्ली उधार माँगने आया था। फिर उन्होंने इस शर्त पर बिल्ली दी कि मैं तीसरे दिन वापस लौटा दूँ। साथ ही उसके नाश्ते, लञ्च और डिनर के सम्बन्ध में आदेश दिये कि लाड़-प्यार में पली हुई है कहीं दुबली न हो जाय। बिल्ली बहुत मोटी थी। उसे देखकर रूफ़ी बोले—"भई यह बिल्ली तो दिन-प्रति-दिन मोटी होती जा रही है, हालाँकि पहली बिल्लियों को सारा-सारा दिन भूखा रखा जाता था।

बिल्ली अनोखी शान से रहती थी। खुशामदें करा के खाना खाती। जरा सी बात पर बुरा मान जाती और देर तक रूठी रहती। आते ही उसने रूफ़ी के पिता पर पञ्जा उठाया और रूफ़ी सोचने लगे कि जासूसी के अनुसार तो इन पर सन्देह करना चाहिये था। फिर रूफ़ी बोला—"केवल पंजा उठानेसे संदेह नहीं किया जा सकता। बिल्ली को कुछ और भी करना चाहिये।"

शाम को मास्टर साहिब आये, उन पर बिल्ली ने न केवल पंजा

उठाया, अपितु आँखें भी दिखाई और दाँत भी निकाले, तो मानो मास्टर साहिब ने स्वयं अपना माल चुराया था। उनके पूछने पर हम ने विस्तार से बातें बताई। वे बोले—"तुम व्यर्थ अपना समय नष्ट कर रहे हो, जो कुछ होना था हो चुका, भला बिल्लियों से कहीं सुराग़ अथवा खोज निकले हैं।"

"और यदि सुराग़ निकाल गया, तो ?"

"तो शर्त वही कि जो कुछ तुम कहोगे करूँगा।"

तीसरे दिन वह बिल्ली मुझे वापस करनी पड़ी। नई बिल्ली की खोज में फिर मारा-मारा फिरा। बड़ी मुसीबत से एक लड़के से एक रुपये में एक मरियल-सी काली बिल्ली ख़रीदी। उसे दिन भर तो मैंने छिपाय रखा। रात को रूफ़ी ने देखा। तो बड़ा खेद प्रकट किया।

"ऐ हाय ! बेचारी बिल्ली—यह इसे क्या हो गया—एकदम इतनी दुबली कैसे हो गई ?"

हमें जब अवकाश मिलता, बिल्ली को लेकर बाहर निकल जाते—इसी आशा पर कि चोर अब मिला—अब मिला और फिर खुदा का करना क्या हुआ, उसी मरियल-सी बिल्ली ने, जो इतनी सुलह-पसन्द और सौम्य स्वभाव वाली थी, सब के सामने रस्सी तुड़ा कर छलाँग लगाई और चपड़ासी के ऊपर सवार हो गई। यह वही चपड़ासी था, जिसने कुछ दिन पहले अपने विचित्र रोग से स्वास्थ्य प्राप्त किया था। बिल्ली उसे नोचे डालती थी, पँजे मार रही थी, गुर्रा रही थी। हमने कठिनाई से उसे छुड़ाया। बिल्ली की इस चेष्टा से सब को चपड़ासी पर संदेह हुआ। जब उसे डराया धमकाया गया, तो वह मान गया कि उसने चोरी की थी।

अगले दिन तक मास्टर की सब चीजें वापस मिल गईं। हमारी बड़ी प्रशंसाएँ भी हुईं। हमारी सुराग़-रसानी को सराहा गया। हमारे चित्र बिल्ली के साथ उतारे गये और सचाई का कैनाज मुझे पता था,—बिल्ली के सम्बन्ध में भी और चोर के सम्बन्ध में भी।

चोर तो केवल अपने दुर्भाग्य से पकड़ा गया। हुआ यूँ कि बिल्ली दो दिन से भूखी थी उधर वह चपड़ासी रसोई घर से निकला था। जब वह बिल्ली के सामने से गुज़रा, तो उस में से पलाव और भुने हुए गोश्त की सुगन्ध बुरी तरह आ रही थी। बिल्ली ने जो कुछ किया वह सुराग़-रसानी के सिलसिले में नहीं किया, भूख से तंग आ कर किया।

"मैं और रूफ़ी बाग़ में बैठे थे। सामने फलों का ढेर लगा हुआ था। हमारे ज़िम्मा यह काम लगाया गया था कि हम छाँट कर कच्चे फल अलग कर दें और पके अलग। रूफ़ी बड़े ध्यान और सोच विचार से छाँट रहे थे। एक-एक फल पर बड़ी देर लगाते थे। मैंने पूछा। बोले, "यह चुनाव है, जो मुझे मारे डालता है। जानते नहीं कि हम आज कल किस प्रकार की कहानियाँ पढ़ रहे हैं ?"

"मेरे ख़याल में फल चख कर छाँटे जाएँ," मैंने परामर्श दिया। हम ने पके फल खाने आरम्भ कर दिये। मास्टर साहिब पधारे। वे हमारा धन्यवाद करने आये थे। लड़को मैं शर्त हार गया। बताओ मैं क्या करूँ ?"

"आप पचास बार सुलेख लिखिये कि "मैं हार गया ?" रूफ़ी बोले और मास्टर साहिब ने सचमुच लिख दिया।"

मुझे वह दिन भी याद है, रूफ़ी और मैं झील के किनारे लम्बी-लम्बी घास पर बैठे थे। रात को बर्षा हुई थी। प्रातः सर्वथा साफ़ था। शुष्क वायु चल रही थी। वायु मण्डल में बादल तैर रहे थे। झील के नीले पानी पर हल्की-हल्की धुंध छाई हुई थी। हर चीज़ में निखार था, ताज़गी थी। ऐसा लगता था, जैसे दुनिया की अभी-अभी सृष्टि हुई है।

हम कहानियाँ पढ़ते रहे, बातें करते रहे, खेलते रहे। उड़ते-फुदकते हुए पक्षियों और नाचती हुई तितलियों को देखते रहे। हमारी डोरें पानी में थीं। दिन भर हमें मछलियों की प्रतीक्षा रही। हम उन्हें भूनने के लिये सारा सामान लाये थे। दिन ढले रुस्तम हमें लेने आया। ऐसे मनोहर दृश्य को देख कर वह भी हमारे साथ बैठ गया और अजीब-

अजीब-सी बातें सुनाने लगा। जब रुस्तम ऐसी बातें करता, तो हमें बिल्कुल अच्छा न लगता। हम उसकी बातें भी न सुनते, वह बड़ी गंभीर-सी बातें कर रहा था कि क्या अच्छा हो, जो जीवन इसी आत्म-विस्मृति और आत्म-प्रवञ्चना में गुज़र जाया करे, इसी प्रकार मुसकुराता हुआ गुज़र जाया करे। परन्तु यूं नहीं होता। कोई कितना ही प्रयत्न करे। ऐसा कदापि नहीं होता। इन स्वप्नों से चौंकना पड़ता है।" वे हमें कहने लगे—

"लड़को ! तुम बड़े होगे, तो तुम्हें बड़ा अफ़सोस होगा। ज्यों-ज्यों तुम्हारा अनुभव बढ़ता जायगा, तुम्हारे विचारों में परिपक्वता आती जायगी, अफ़सोस भी बढ़ता जायगा। वे स्वप्न फीके पड़ते जायेंगे, तब अपने आपको धोखा भी न दे सकोगे—अपने आप से प्रवञ्चना न कर सकोगे। बड़े हो कर तुम्हें मालुम होगा कि जीवन बड़ा कठिन है। जीने के लिये उच्च पद की आवश्यकता है, सम्मान की आवश्यकता है। सम्मान के लिये रुपये की आवश्यकता है और रुपया प्राप्त करने के लिये मुक़ाबला होता है। मुक़ाबले में झूठ बोलना पड़ता है, धोखा देना पड़ता है, ग़द्दारी-विश्वासघात करना पड़ता है—यहाँ कोई किसी की परवाह नहीं करता। संसार में मित्रता, प्रेम-प्रीति सब सम्बन्ध स्वार्थ पर, मतलब पर टिके हैं। मीठी प्रेम भरी बातों, मुस्कराहटों, कृपाओं, अनुकम्पाओं—इन सब की तह में कोई स्वार्थ छिपा है। यहाँ तक कि खुदा को भी केवल आवश्यकता पड़ने पर याद करते हैं और जब खुदा दुआ स्वीकार नहीं करता, तो लोग नास्तिक बन जाते हैं और उनके अस्तित्व ही को मानने से इन्कार कर देते हैं, और संसार को तुम कभी खुश नहीं रख सकते।

"यदि तुम मूर्ख हुए तो संसार तुम पर हँसेगा, तुम्हारा मज़ाक उड़ायगा। यदि बुद्धिमान हुए, तो ईर्षा करेगा। यदि तुम अलग-अलग रहे तो तुम्हें चिड़चिड़ा और मक्कार कहा जायगा। यदि प्रत्येक से घुल-मिल कर रहे, तो तुम्हें असंभ्रान्त और खुशामदी समझा जायगा।

यदि तुमने सोच समझ कर धन खर्च किया, तो तुम्हें हीन-विचार और कंजूस कहेंगे और यदि उदारचित हुए, तो अदूरदर्शी और फ़ुज़ूलखर्च। आयु भर तुम्हें कोई नहीं समझेगा, न समझने का प्रयत्न करेगा। तुम सदा अकेले रहोगे। यहाँ तक कि एक दिन आयगा और तुम चुपके से इस संसार से विदा हो जाओगे। यहाँ से जाते समय तुम आश्चर्य-चकित होगे कि यह क्या तमाशा था। इस तमाशे की आवश्यकता क्या थी। यह सब कुछ कितना निरर्थक और बेकार था।"

सूर्य छिप रहा था। एकाएक दूसरा किनारा जगमगा उठा। वहाँ बादल के टुकड़ों और धुन्ध ने ऐसा रंगीन और मनोहर महल बना दिया कि हमारी आँखें खुली की खुली रह गईं—ललित कला का अद्वितीय नमूना महराबें, रंग-बरंग बुर्ज और मीनार, बल खाती हुई सीढ़ियाँ। दूर-दूर तक फैली हुई फ़स्लें!

हमने रुस्तम को संकेत से यह महल दिखाया—"कौन कहता है कि वह किनारा भी ऐसा ही है—? वह देखो—"

फिर सब कुछ नीला हो, गया—आकाश झील, बादल, आवेगमी और दूसरा किनारा—सारा जगत् नीला हो गया—। बादल का बना हुआ वह सुन्दर महल संगिमरमर का बन गया। उस पर हल्की-हल्की चाँदनी छा गई।

\+ \+ \+

इन बातों को काफ़ी वर्ष गुज़र चुके हैं और अब मुझे दूरदर्शी, जगत्-अनुभवी और बुद्धिमान होना चाहिये, परन्तु दुर्भाग्य से यह लम्बा समय मुझमें ज़रा भी परिवर्तन न ला सका।

जब कभी जीवन की तलखियाँ, कटुताएँ सामने आती हैं, उग्र सत्य सुन्दर और सुललित स्वप्नों को कुचल डालते हैं, तब मैं किसी ऐसी ही नीली झील के किनारे का आश्रय लेता हूँ। और जीवन में इन झीलों का क्रम बँधा हुआ है। दृष्टि सीमा तक यह झीलें इस प्रकार फैली चली गई हैं कि जहाँ एक समाप्त होती है, वहाँ दूसरी आरम्भ हो जाती है।

और जहाँ सचाइयों की सीमाएँ कल्पना की सीमाओं को छूती हैं, वहाँ एक रहस्यमय क्षेत्र है, सर्वथा वैसा ही सुन्दर, भव्य और चित्ताकर्षक है दूसरा किनारा ! जिसका सौन्दर्य, आकर्षण, जिसका जादू मेरे लिये अब तक वैसा ही है ।

—"शफ़ीकुर्रहमान"

कोलतार

१

एक दिन की बात है कि दोपहर का समय था और घर में बिल्कुल सन्नाटा था। नौकरानी खाना पका रही थी और अम्मा-जान भी एक जगह चली गई थीं। वह आजकल कुछ खर्च के कारण परेशान थीं। किरायादारों ने किराया अब तक न दिया था। इस कारण रुपया-पैसा की ओर से कष्ट था। घर में सवाए हम दो माँ-बेटियों के कोई न था, और जब अम्मा-जान भी चली गईं, तो मैंने मकान का द्वार बन्द कर दिया और समय काटने के लिये अपनी बिल्ली के बच्चों का घर बनाने लगी।

अम्मां-जान को गये हुए मुश्किल से घण्टा भर हुआ होगा कि दरवाज़े पर किसी ने जोर से दस्तक दी—"दरवाजा खोलो।"

कोई जोर से दरवाजा पीट रहा था। मैं दरवाज़े की ओर गई, तो फिर यही आवाज आई। मैंने मन में कहा—"इलाही यह कौन है, जो ज़ोर-ज़ोर से दरवाजा पीट रहा है और चिल्ला रहा है? दबे पाँव धीरे-धीरे दरवाजे के पास पहुँची। दरवाजे में से कुछ दिखाई न दे सकता था। मैंने दरवाजे से कान लगाया, और बातों से तुरन्त मालूम कर लिया कि हमारे किरायादार के लड़के हैं। शायद किराया देने आए हैं। इतने में फिर दरवाजे को इस ज़ोर से पीटा कि मैं चौंक सी पड़ी और पुकार कर कहा—

"किराया ले लीजिये······दरवाज़ा खोलो······कोई है?"

मैं चुप रही फिर आपस में बातें करने लगे। इतना मुझे मालूम

ही था कि तीन लड़के हैं और इस समय भी शायद तीनों ही होंगे। अब मैं खड़ी सोच रही थी कि क्या करूँ। यह जानती ही थी कि अम्माँ-जान को रुपया की कितनी सख्त जुरूरत है और वे नौकरानी से कह भी चुकी थीं कि लड़कों से तक़ाज़ा करके किराया ले लेना। अन्यथा यदि अवसर निकल गया, तो फिर दूसरे महीने तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। लड़कों का भी नियम था कि यदि किराया रह जाता, तो वुसूल न होता। सब खर्च कर डालते थे। सारांश, अम्मा-जान को रुपया की अत्यन्त आवश्यकता थी। मैं खड़ी दरवाजे के पास सोच रही थी।

इतने में एक लड़के ने कहा—"जब किराया लाओ तो कोई लेता नहीं और फिर शिकायत होती है कि समय पर देते नहीं।"

दूसरा बोला—"अब इसका उपाय यह है कि पन्द्रह दिन खूब तंग करके किराया दिया जाय।"

एक और बोला—"बस, बस, यही ठीक है। अब चलो।"

"चलो, चलो," दोनों ने कहा।

रुपया-पैसा की आवश्यकता भी बुरी चीज़ है। मैने तो यह सुना और देखा कि किराया प्राप्त होना फिर कठिन हो जायगा, तो मुझ से न रहा गया और मैंने भीतर से दरवाजे को धीरे से थप थपाया अर्थात् किवाड़ पर हाथ मारा।

"साहिब किराया ले लीजिये", किसी ने अत्यन्त बिगड़ कर क्रोध भरे शब्दों में कहा—"हम घण्टा भर से किवाड़ पीट रहे हैं।"

अब मेरी समझ में न आया कि क्या करूँ। मैं चुप रही और सोच रही थी कि फिर उसी लड़के ने कहा—"यदि नौकरानी नहीं तो दरवाजा की आड़ से स्वयं ले लीजिये, अन्यथा फिर आज हम लोग एक जगह जा रहे हैं और इस महीने में अदा न कर सकेंगे।"

अब ऐसे अवसर पर आप स्वयं विचार करें कि मैं विवश हो गई। आड़ से रुपया लेने के लिये दरवाजा खोलने ही को हुई कि फिर रुक गई।

"तो फिर हम जाते हैं," उसी ने कहा। शेष दोनों लड़के मौन थे।

चाहिये था कि ऐ कुल जिह्वा से काम लेती और कह देती कि "पड़ोसिन को देते जाओ, जाते हो तो जाओ," फिर खयाल आया कि एक छोड़ तीन लड़के हैं। दिन का समय है, और चलती राह में कोई हानि नहीं। लाओ आड़ से ले लूं कि इतने में फिर उन्होंने कहा— "ऊँह चलो जी।"

मैंने सुनकर कुण्डी खोल दी। उसकी आवाज सुन कर उसी लड़के ने कहा····"लीजिये।"

मैंने दरवाजे को जरा सा खोला और उस की प्रतीक्षा करने लगी कि कोई रुपया देगा कि बेखबरी में एकाएक दरवाजे के दोनों किवाड़ों को उस लड़के ने ऐसा धक्का दिया कि दोनों किवाड़ एकदम खुल गये और मैं तीनों लड़कों के सामने खड़ी थी। होश भी ठिकाने न हो पाये थे कि आमना-सामना होते ही उस लड़के ने, जो सबसे आगे खड़ा था, डपट कर कहा, "कोलतार!"

क्या बताऊं कि मेरे कैसे होश गये और मैं कैसी बेसुध सी होकर गिरती पड़ती बेतहाशा भागी कि एक पुराने कोयले के कनस्तर में उलझ कर गिरी और मेरे गिरने पर फिर उसने कहा, "कोलतार।"

मैं सँभल कर फिर पागलों की तरह भागी और ड्योढ़ी के दूसरे दरवाजे को तेज़ी से बन्द किया। ऐसे मेरे होश गुम हुए कि जड़वत हो गई। शरीर काँप रहा था और मैं पसीना-पसीना हो गई। इस तेजी से दिल धड़क रहा था कि वहीं की वहीं दरवाजे से सिर टिकाकर बैठ गई।

लड़के जा चुके थे और थोड़ी देर में जब जरा दिल की धड़कन बन्द हुई, होश ठिकाने आये, तो उठी। लड़कों की इस कमीना हरकत पर सख्त गुस्सा आ रहा था। यह बिल्कुल ही असाधारण बात थी। लड़कों ने कभी किसी प्रकार की बात न की थी और आज यह!— मैं बहुत हैरान थी और इस असाधारण शरारत का कारण पूछना चाहती थी। अस्तु, सीधी छत पर पहुँची।

दिवंगत अब्बाजान के समय में ऊपर के दोनों कमरे एक थे। परन्तु उनके मरने के पश्चात् बीच का दरवाज़ा ईंटों से चुनवा कर बराबर वाला कमरा अलग कर दिया गया था। परन्तु अब भी दोनों कमरों के आगे का छज्जा, जो सड़क की ओर था, एक ही था। नाम-मात्र के छज्जे को इस प्रकार अलग कर दिया गया था कि लोहे की चादर में एक दीवार-सी खड़ी कर दी गई थी। वह इस प्रकार कि चादर में छेद कर के लकड़ी के खम्बों से बांध दिया था और यह काफ़ी था कि इधर का व्यक्ति उधर न जा सके और उधर का इधर न आ सके। परन्तु यह आड़, देखा जाय, तो केवल नाम ही की आड़ थी। क्योंकि लकड़ी के खम्बे को पकड़ कर छज्जे के कठघरे पर से होकर इधर से उधर या उधर से इधर आना कोई अधिक कठिन काम न था। हमारे कमरे के छज्जे के सामने पर्दे के विचार से चिकें पड़ी हुई थीं। मैं दबे पाँव इस छज्जे पर पहुँची। टीन के पास कान लगा कर लड़कों की बातें सुनने लगी।

लड़के खूब हँस रहे थे और मुझ को अत्यन्त क्रोध आया कि जब मालूम हुआ, कि मेरा नाम "कोलतार" नहीं, प्रत्युत "कोलतार साहिब" रखा गया है। मैंने ध्यान से लड़कों की शरारत भरी बातें सुनीं और मुझको मालूम हुआ कि यह दुष्ट मेरी आवाज़ सुन कर आपस में मेरी सूरत शक्ल के सम्बन्ध में अनुमान लगाया करते थे और इस बहस का निर्णय करने के लिये बहुत समय से मुझ को किसी न किसी प्रकार देखने की चिन्ता में थे। यह भी ज्ञात हुआ कि उन लोगों को पता था कि आज इस समय घर में सिवाय मेरे और कोई नहीं।

इतने में ऐसा मालूम हुआ कि जैसे नौकर बर्फ लाया। लोटा उठाने और बर्फ को छज्जे पर धोने की आवाज़ आई। मैंने सोचा अब जाऊँ और जाने ही को थी कि एक दम से टीन के पर्दे की दीवार के पास वाली चिक उठी और उसी शरारती लड़के ने सिर डाल कर झाँका। उसका मेरा सामना हो गया। अब की बार तो इतनी निकटता से कि यदि ज़रा भी मैं और आगे होती, तो सिर से सिर लड़ जाता, क्योंकि मैं सड़क की ओर मुँह किये कान लगाए हुए थी और उसी ओर से उस ने अपना सिर डाला था। सामना होते ही उसने ज़ोर से कहा—"कोलतार!" और इतनी नज़दीकी से कि उसके मुंह की साँस मेरे मुंह पर लगी। मैं दूसरी शरारत के लिये सर्वथा तैयार न थी और ऐसी बौखलाई कि गिरते-गिरते बची और तुरन्त अपने कमरे में घुस गई और दरवाजा बन्द करके निष्प्राण-सी होकर पलंग पर गिर पड़ी। बराबर के कमरे से हँसने और तेजी से बातें करने की आवाजें आ रही थीं। जब ज़रा तबीअत ठिकाने हुई, तो मैंने अब उस दवाजे से कान लगाए, जो ईंटों से चुन दिया गया था। जब कुछ साफ सुनाई न दिया, तो मैंने एक स्थान से बहुत आसानी से एक बड़ी कील से छेद कर लिया, क्योंकि केवल एक ईंट की दीवार थी और उसी जगह मैं पहले भी छेद करने का प्रयत्न कर चुकी थी।

अब इस छोटे से छेद में से मैंने देखा कि दो लड़के कुर्सियों पर बैठे हैं। तीसरा ज़रा विलग था। उसकी केवल टाँगें दिखाई देती थीं। उन दोनों के हाथ में दूध के शरबत के गिलास थे और दोनों गिलासों में बर्फ बजा-बजा कर मजे से बातें कर रहे थे और शरबत पी रहे थे। अब मैंने बातें संतोष से सुनीं।

उसी शरारती लड़के ने बातों के प्रसंग में कहा, "ला-हौल-वला कुव्वता! तुम भी अजीब आदमी हो।"

दूसरे ने कहा—"जी हाँ, वह अपनी माँ से कह दे, तो क्या होगा?"

"क्या होगा?" उस दुष्ट ने अपना गिलास मुंह से हटा कर कहा,

"क्या होगा ? यही कह देंगे कि साहिब हम ने आवाज दी और कुण्डी खुली, तो हम ने यह जानकर कि नौकरानी है दरवाज़ा खोल दिया। इस में भला हमारा क्या अपराध। गली की बात है। राहगीर भी होंगे। कोई शरारत ऐसी जगह संभव है, किसी को संदेह भी नहीं हो सकता।"

"खैर जनाब यह कोई न मानेगा," उसने कहा।

"मत मानने दो जी," उसने लापरवाही से कहा, "क्या मैंने उसे खा लिया।" उस ने ज़ोर से हँस कर कहा। मैं न कहता था कि आज मौका खूब है और सिवाय 'कोलतार साहिब' के घर में कोई नहीं।"

इस पर तीसरा बोला, "भई, न्याय की बात तो यह है कि काली तो है नहीं और 'कोलतार' नाम ठीक नहीं। कुछ जचता नहीं।"

"यह कहिये," ज़ोर से उसने ठहाका लगा कर कहा, "तुम स्वयं 'ब्लैक जापान' (एक काला वलायती रोगन) हो......"

इस पर एक और ठहाका लगा कर उसने कहा, "...अस्तु हमारा इरादा हो रहा है कि तुम्हारे ब्याह का संदेश दें"...फिर ज़ोर से ठहाका लगा और इधर मेरा मारे गुस्से के बुरा हाल। मैं अत्यन्त घृणा भरे क्रोध से उस दुष्ट को देख रही थी। फिर उसने कहा, "......हम संदेश देंगे और साफ़ कह देंगे कि साहिब मिला लो तो, यदि हमारा लड़का लोच में कम हो, तो दाम वापस।" फिर जोर से ठहाका लगा।

उस 'ब्लैक जापान,' की उपाधि पाने वाले हज़रत ने हँसते हुए कहा, "भाई, मैं तो हूँ और मानता हूँ, परन्तु वह काली नहीं, कदापि नहीं। अच्छा खिलता हुआ रंग है, प्रत्युत......"

"प्रत्युत खूब गोरी चिट्टी, लाल-सफेद यूरोपियन की नानी है।" उसने व्यंगमय ढंग से वाक्य पूरा किया और इस पर फिर हँसी हुई।

फिर कहा, "अरे मियाँ, तुम तो मूर्ख हो। माना कि वह काली नहीं और गोरी है, परन्तु ज़रा यह नहीं देखते कि बेईमान निकली।"

"वह कैसे ?" ब्लैक जापान बोले।

उस दुष्ट ने कहा, "वह ऐसे कि आवाज़ सुन कर बहुत दिनों से जो

विचार उसके बारे में हमने अपने मन में स्थिर किया था, उससे वह सर्वथा भिन्न है । ज़रा यह नहीं देखते कि हम तो सिर पर तवा बाँध कर जाएँ इस नीयत से कि बड़ी सुन्दर, गोरी चिट्टी लाल सफेद चाँद के टुकड़े को देखेंगे और वहाँ हमें साधारण लड़की देखने को मिले, तो तुम ही न्याय से कहो कि मुँह से 'कोलतार' न निकले, तो और क्या निकले । उसकी आवाज़ से हमने जैसा उसको अपने मन में सोचा था, उसकी अपेक्षा सचमुच कोलतार पाया, अतः मुँह से भी कोलतार निकल गया और फिर उसको हमारे अपने निश्चित मानदण्ड से गोरा कहना तो सोलह आने अपराध भी है, अपराध भी कैसा ?······पुलिस के हस्तक्षेप के योग्य ।"

ब्लैक जापान साहिब बोले—"यह और बात है, किन्तु काली तो नहीं ।"

मेरी बिल्ली सामने कुर्सी पर बैठी थी और उन बातों को छोड़कर उसने कहा, "भाई ! कोलतार साहिब की बिल्ली को थोड़ा-सा शर्बत और दो," यह कह कर उसने एक प्याली बिल्ली के आगे रख दी और तीनों ने थोड़ा-थोड़ा अपने गिलासों में से बिल्ली को दिया । अब मैंने उस लड़के को देखा, जिसका नाम ब्लैक जापान था, क्योंकि अब तक यह आड़ में था । उसका रंग सचमुच साँवला था । शेष दोनों भी अच्छे रूप रंग के लड़के थे । जिसने यह सारी शरारत की थी और मेरा नाम कोलतार रखा था, उसका रंग ज़रा अधिक साफ़ था । नाक-नक्शा भी अच्छा था । मुझको स्वीकार करना पड़ा कि मुझसे कहीं अधिक उसका रंग साफ़ है, यह सब कुछ था, परन्तु उस समय उस की सूरत पर कमीनापन बरस रहा था ।

अब दूसरी बातें होने लगीं और कुछ खाने पकाने की चर्चा आरंभ हो गई । मैं चलने को हुई कि फिर रुक गई, क्योंकि फिर उसी दुष्ट ने कहा, "क्यों भई, क्या राय है ? आज कोलतार साहिब की दावत रहे ।"

उसके चेहरे से शरारत टपक रही थी। आँखों में तेज़ी थी, जिससे साफ़ समझ गई कि अब फिर यह कोई शरारत सोच रहा है।

"वह कैसे ?" दूसरे ने कहा।

"वह ऐसे कि आज रात को खीर पके और कोलतार साहिब को भी खिलाई जाय।"

"शायद बुरा मानें, वापस कर दें।"

उसने कहा, "हमें उन्होंने ईद पर सेवय्याँ भेजी थीं और फिर प्रायः कुछ न कुछ भेजा करती हैं। यदि उन्होंने खीर वापस कर दी, तो भविष्य में हम भी उनके यहां की कोई चीज़ न लेंगे।"

अस्तु यह फ़ैसला हो गया कि खीर के प्याले आज मेरे लिये भेजे जायँगे। मैंने मन में जल कर कहा कि यदि वापस न कराये, तो कोई काम न किया।

इसके बाद मैंने कमरा बन्द कर दिया और नीचे चली आई। नीचे आकर ड्योढ़ी का दरवाज़ा खोलकर दबे पाँव ड्योढ़ी में जाकर बड़ा दरवाज़ा बन्द कर दिया।

अब मैं सोच रही थी कि आख़िर इस शरारत की सूचना अम्मा-जान को दूं या न दूं ? मुझको वास्तव में इस बात पर गुस्सा आ रहा था कि इस दुष्ट ने मेरा नाम कोलतार रख दिया। आज तक किसी ने मुझको काला तो काला साँवला तक न कहा था, स्वाभाविक रूप में मैं लड़कों की आपस की बातों का ख़याल कर के सोच रही थी कि क्या सचमुच ही मैं काली हूं। दर्पण के सामने जाकर खड़ी हुई, देर तक देखती रही और सोचती रही। कुछ चुप सी हो गई। न इस कारण से कि मेरा अपना रंग और रूप कुछ काला या फीका था, अपितु इस कारण से कि शायद मुझे "कोलतार" कहने वाले का रंग मुझसे अधिक खिलता हुआ था। फिर भी मुझको रह रह कर गुस्सा आ रहा था कि मैं गोरी न सही, बिल्कुल काली सही, परन्तु यह कमबख़्त कौन होता है। सारांश, रह रह कर मुझको गुस्सा आ रहा था।

सायं के समय नौकरानी आई, तो तुरन्त मैंने उसको किराया वुसूल करने भेजा। मैं वुज़ू१ कर रही थी कि नौकरानी एक चिट लेकर आई। चिट कभी न आती थी। मैंने भीगे हाथों ही से चिट देखी, तो उस पर लिखा था, "किराया मई महीने का" यह लिखने की भला क्या आवश्यकता। चिट मैंने फेंक दी। वह उड़कर नीचे गिरी। हठात् मैंने झुककर फिर उठाई, क्योंकि उसकी पीठ पर कुछ लिखा था। मैं जल रही तो गई, जब मैंने देखा कि मोटे अक्षरों में लिखा है, "कोलतार साहिब।" मैंने चिट फेंक दी, परन्तु फिर उठा ली कि नौकरानी अम्माँ-जान से कहेगी कि एक चिट और किराया लाकर दी थी। चिट अम्माँ के बिना फाड़नी न चाहिये।

नमाज़ से निबटने के पश्चात् बावरची खाने (रसोई) में गई। बिल्ली चूल्हे के पास बैठी हुई थी। ध्यान से देखा, तो उसके लाल साटन के पट्टे पर चारों ओर "कोलतार" शब्द लिखा हुआ था। मैंने क्रोध में बिल्ली को पीट डाला कि कमबख्त वहाँ जाकर क्यों मरती है। पकड़ कर ले गई और लाल पुड़िया घोलकर कोसती गई और मिटाती गई। मुझको बेहद गुस्सा आ रहा था। बिल्ली को छोड़ा ही था कि उसके सफेद सफेद पेट पर नज़र पड़ी। रोशनाई से बड़े-बड़े अक्षरों में बड़ी निपुणता से इस प्रकार बाल रंगे गये थे कि साफ़ "कोलतार" लिखा था। मारे खिसियानापन और क्रोध के मेरी आँखों से आँसू निकल आये। पहले तो बिल्ली को खूब पीटा, फिर पानी से बड़ी कठिनाई से बाल रगड़-रगड़ कर मिटाया। धब्बा फिर भी न गया। बड़ी देर तक मुझको इन हरकतों पर गुस्सा आया। सोच रही थी कि अम्मा जान से कह कर उस दुष्ट को निकलवाऊँगी।

सायंकाल अम्माँ-जान आ गईं। मैंने बहुत चाहा कि कह दूँ। बार-बार साहस करके आती। एक बार तो सम्बोधन भी किया, परन्तु

---

१. नमाज़ पढ़ने के लिये हाथ मुँह पाँव धोने की क्रिया।

कहते-कहते रह गई। जुबान ही बन्द हो गई। कुछ और बात कह कर टाल दिया।

\+ \+ \+

रात को नौकरानी जाने वाली हो रही थी कि किसी ने दरवाजे पर आवाज़ दी। मैंने आवाज़ पहचान ली। लड़कों का नौकर था। अब मुझे याद आया। क्या देखती हूँ कि नौकरानी एक थाल लिये चली आ रही है। मैं समझ गई कि खीर है। मैं कुछ व्याकुल होकर घबरा सी गई और वह केवल इस कारण से कि जानती थी कि मुझे भेजी है। अम्माँ-जान से नौकरानी ने कहा, "लड़कों ने सलाम कहा है और यह खीर भेजी है।"

मैंने तुरन्त अम्माँ-जान को सलाह दी कि वापस कर दो। यह कैसी खीर? इस पर नौकरानी बोली कि नौकर ने कहा है कि लड़कों ने किसी शहीद की मन्नत बाँटी है। मैं फिर भी न मानी और अम्माँ-जान से अनुरोध किया कि खीर वापस कर दें। जब मैंने बहुत कुछ कहा, तो ने स्नेहपूर्वक कहा—"न बेटी मन्नत की खीर है। भला यह भी कोई बात है कि कोई प्रेमवश उपहार भेजे और हम वापस कर दें। यह कोई ढंग नहीं है।"

परन्तु मैंने फिर हठ किया और कहा, "पड़ोसियों का ख़्वाहमख़्वाह का इहसान हम क्यों लें?"

अम्माँ बोलीं—"ऐसा ही है, तो तुम स्वयं कभी इहसान उतार देना।"

मैंने जल कर कहा, "इन कमबख़्तों का हम इहसान ही क्यों लें, जो उतारते फिरें।"

इस पर अम्माँ-जान कुछ ख़फ़ा होकर बोलीं, "ऐसा ही है, तो फेंक दे, परन्तु मैं वापस न करूँगी।"

विवश होकर मैं बुड़बुड़ाती हुई उठी और लालटेन लेकर प्याले रसोई घर में रखने लगी। प्यालों पर चाँदी के वरक तो न थे, परन्तु पिस्ते

की बारीक-बारीक हवाइयाँ आवश्यकता से अधिक छिड़की हुई थीं। मैंने जो ध्यान से देखा, तो बस जल ही तो गई। क्योंकि चारों प्यालों पर अत्यन्त सफाई से बड़े-बड़े अक्षरों में पिस्तों की हवाइयों से शब्द "कोलतार" लिखा हुआ था। जल्दी-जल्दी मैंने उँगलियों से पिस्तों की हवाइयाँ इधर-उधर करके अक्षर बिगाड़ दिये। मैं क्रोध में सुलग रही थी और प्यालों को रखकर बुड़बुड़ाती हुई पलंग पर जा बैठी। अम्माँ-जान ने नौकरानी से कहा, "कह देना कि दुआ कही है।"

अम्मां-जान ने दुआ कहलवाई और मैं कोस रही थी कि देखो, तो इस दुष्ट ने कैसा मेरा पीछा२ लिया है कि इतने में नौकरानी थाल देकर वापस आई और कहा कि लड़कों का नौकर ड्योढ़ी पर खड़ा है और कहता है कि लड़कों ने कहा है कि थोड़ा सा हमें "कोलतार" दे दीजिये। सख्त ज़रूरत है।"

यह सुन कर मैं आपे से बाहर हो गई और जल कर मैंने कहा, "कह दो अधिक बद-तमीज़ी न करें। यहाँ कोलतार कहाँ से आया।"

अम्मां बोलीं, "बेटी, तुझे क्या हो गया है, अकारण लड़कों से दुश्मनी हो गई है ? आखिर इन्सानियत से काम क्यों नहीं लेती।"

भला मैं इसका क्या उत्तर देती और किस प्रकार अम्माँ-जान से कहती कि ये दुष्ट कोलतार मुझ को कह रहे हैं और वास्तव में मुझ को छेड़ रहे हैं।

अम्माँ-जान ने नौकरानी से कहा कि जाकर कह दो कि हमारे यहाँ कोलतार नहीं है।

नौकरानी चली गई और लौट आई, तो कहा, "नौकर कहता है कि लड़कों ने कहा है कि हमने आज ही स्वयं ड्योढ़ी में देखा था।"

यह सुनकर मैं धक से हो गई कि या अल्लाह ! यह क्या अत्याचार हो रहा है। कहीं दुष्ट साफ़-साफ़ स्वयं कह न दें कि यह बात है और

---

१. बारीक कुतरा हुआ पिस्ता। २. पीछा लेना=पीछे पड़ जाना।

हमने कोलतार नाम रखा है। मेरे मुँह से अब बात न निकल रही थी। यह अनुमान करना कठिन है कि मेरी उस समय क्या दशा हुई। साथ ही साथ यह भी डर था कि न तो मैंने नौकरानी से कहा था और न माँ से कहा था कि उनकी अनुपस्थिति में दरवाजे पर लड़के आये थे।

परन्तु क्रोध ने भय को दबा लिया और मैंने जल-भुन कर कहा 'कमबख्त पाजीपन और कमीनापन कर रहे हैं।"

मेरे कठोर वचनों पर अम्माँ-जान बिगड़ खड़ी हुई और मुझे सैंकड़ों बातें सुना डालीं कि कंवारी होकर डेढ़ हाथ की जुबान लिये फिरती है। मैं दिन भर से छेड़ी गई थी, वैसे ही चिड़चिड़ी हो रही थी। अम्माँ-जान की सख्त सुस्त बातों को सहन न कर सकी और कोने में मुँह देकर खूब रोई।

अम्माँ-जान ने लड़कों को कहलवा दिया था कि कोलतार नहीं है। उन्होंने उन्मझा कि ड्योढ़ी में लड़कों ने कोयलों का पीपा देखा होगा, जिसमें मैं उलझ कर गिरी थी और लड़कों को भी यही कहलवा दिया कि वह टीन वास्तव में कोयलों का है, कोलतार का नहीं।

३

दूसरे दिन की बात है कि मुझ को पिछले दिन की घटनाओं का खयाल भी न था कि मैं रसोई घर में गई। मेरी बिल्ली आई मैंने देखा भी नहीं। अम्माँ जान ने कहा, "यह बिल्ली के गले में कागज कैसा है?"

मैं धक-सी हो गई। लड़कों के साथ बिल्ली प्रति दिन नाश्ता करने जाती थी। कागज मैंने बिल्ली के पट्टे में से निकाला। उस पर सैंकड़ों जगह तेजी से टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में "कोलतार लिखा" हुआ था। मैंने बिल्ली को घूंसा मार कर कहा, "कमबख्त प्रति दिन वहीं जाती है

और अपनी गत बनवाती है।" यह कह कर कागज़ अम्मा-जान को दे दिया। उन्होंने इधन-उधर देख कर लापरवाही से मरोड़ कर फेंक दिया। मैंने थोड़ी देर बाद छुरी लेकर पट्टा ही काट दिया कि कहीं फिर यही शरारत न हो।

+ + +

थोड़ी देर बाद छत पर जो गई, तो क्या देखती हूँ कि दीवार के पास बहुत-सी रद्दी कागज़ की मरोड़ियाँ पड़ी हैं। असाधारण रूप से जो मैंने उन को यहाँ देखा, तो उन में से एक को उठा कर पढ़ा वही शरारत थी अर्थात् उस पर "कोलतार" लिखा हुआ था। दो तीन और रद्दी के टुकडे देखे सब पर यही लिखा था। यह कूड़ा इस ओर से दीवार पार मेरी ओर केवल मुझ को तंग करने के लिये फेंका गया था। एक दिल में तो आया कि फिर वापस उधर ही फेंक दूं, परन्तु कुछ सोच कर सब को इकट्ठा करके कूड़े में डाल दिया। मैं कमरे में पहुँची और छेद में से देखा, तो वे हज़रत कोई किताब पढ़ रहे थे। उस समय मैंने उन को बड़े संतोष से देखा। मेरे बराबर या मुझ से कुछ कम आयु थी। यद्यपि किताब पढ़ रहे थे, परन्तु स्पष्ट जान पड़ता था कि लड़का क्या है शरारत की पुड़िया है। मैं नहीं बता सकती कि उस व्यक्ति से कितनी घृणा करने लगी थी और मुझे सब बातों का खयाल कर के कितना गुस्सा आता था।

+ + +

उस दुष्ट ने दस पन्द्रह दिन मेरी जान ऐसी मुसीबत में रखी कि वर्णन नहीं कर सकती। अपने कमरे की जितनी रद्दी होती उस पर शब्द "कोलतार" लिख कर मेरी ओर फेंक देता। बिल्ली का पट्टा कट गया, तो उसकी पूंछ में आगे से कागज़ बाँध कर उस पर बीसियों जगह "कोलतार" लिख दिया जाता। फिर इसी पर बस नहीं, अपितु मेरे छज्जे पर आकर कोयले से सारी दीवार पर 'कोलतार' लिख मारा बार-बार मिटाती और बार-बार लिख जाते। मैंने अपने कानों से सुना

कि उनके साथी उन्हें इन शरारतों से रोकते, परन्तु वह भला काहे को किसी का कहना सुनता था।

मुझ को भी थोड़ी बहुत उत्सुकता-सी लगी रहती थी कि देखूँ ये लोग क्या बातें करते हैं। प्रायः इन लोगों की बातें जा-जा कर सुना करती थी। प्रायः अपनी चर्चा सुनती थी। एक दिन मैंने सुना कि वह हज़्ल मेरी शान में कविता पढ़ रहे हैं। सारी कविता में तरह-तरह से शब्द "कोलतार" का प्रयोग किया गया था। समस्त घटनाओं को कविता में कहने की कोशिश की गई। कुछ अशआर (पद) तो सचमुच ऐसे थे कि बावजूद सख्त गुस्से के मुझ को भी हँसी आ गई। परन्तु अधिकाँश शआर ऐसे थे कि सुन-सुन कर लाल-पीली हो रही थी। जब शाइरी समाप्त हो गई, तो मालूम हुआ कि यह कविता पूरी की पूरी मेरे छज्जे की दीवार पर कल दोपहर को चिपका दी जायगी।

थोड़े समय तक मैं उन की हमाकत भरी बातें सुनती रही और फिर चली आई और दिल में यह सोच रही थी कि छेड़-छाड़ का यह सारा काण्ड इस कारण से और भी चल रहा है कि छज्जे की दीवारों से उनका लिखा मिटा देती हूँ। अब यह सोचा कि छज्जे पर जाऊंगी ही नहीं। स्वयं थक कर छोड़ देंगे। कमरा बन्द करके मैं नीचे जाने ही को थी कि मैं ने अपनी बिल्ली को बड़ी तेजी से सामने के पाखाने में जाते देखा।

यह पाखाना बिल्कुल प्रयोग में नहीं आता था और मैं यह देखने को गई कि बिल्ली दौड़ती हुई क्यों गई है? वहाँ मैंने देखा कि कदमचा + पर बिल्ली बैठी हुई है और ताक को देख रही है, जो झरोखे की भाँति आर पार खुला हुआ था। मैंने ताक की ओर देखा, तो मुझे फुरेरी-सी आई। क्योंकि ताक के बीचों-बीच पीली भिड़ों का एक बड़ा-सा छत्ता लटक रहा था। यह छत्ता सर्वथा गोल था और उस पर इतनी भिड़ें

+ पाखाना बैठते समय जहाँ कदम (पाँव) रखे जाते हैं।

चिपटी हुई थीं कि नितान्त पीला हो रहा था। देखते ही देखते मेरा ख़याल न जाने कहाँ से कहां पहुंचा और मैं कुछ सोच कर चली आई।

४

रात को मैं चुपके से उठी और एक बड़ा-सा टीन का डब्बा लेकर ऊपर पाख़ाने में पहुँची। अंधेरा कुछ ऐसा न था और ताक में छत्ता लटका हुआ साफ़ दिखाई दे रहा था मैं कुछ झिचकिचाई, किन्तु फिर साहस करके आगे बढ़ी और छत्ते को सफ़ाई से डब्बे में लेकर अपनी ओर तेज़ी से घसीट कर तुरन्त ढकना बन्द कर दिया। अब पूरा का पूरा छत्ता भिड़ों समेत डब्बे में बन्द था। कान लगा कर मैंने भिड़ों की भिनभिनाहट सुनी और मेरे शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। ढकने को दृढ़ता से पकड़े हुए थी। क्योंकि यह ढकना उस डब्बे का न था, अपितु किसी दूसरे डब्बे का था। कमरे में आकर मैंने उस पर सियाही से बड़े-बड़े अक्षरों में 'कोलतार' लिख दिया। धीरे से दरवाज़ा खोल कर मैंने उस आफ़त के डब्बे को दीवार के पास ही रख दिया और वापस चली आई।

मैं जानती थी कि किस समय उन लोगों को फ़ुर्सत होती है और वास्तव में समस्त शरारतें स्कूल से आकर खाना खाने से पहले ही करते थे। अस्तु दूसरे दिन मैं इस तमाशे को देखने कमरे पर पहुँची। मेरा दिल धड़क रहा था और कई बार मैंने इरादा किया कि डब्बा उठा लूं। मुझ को अधिक प्रतीक्षा न करनी पड़ी। गली में सन्नाटा था और वे लोग अब अवसर पाकर छज्जे की दीवार पर कसीदा (कविता) चिपकाने पहुँचे। टीन के इस ओर आने की साफ़ आहट भी सुनाई दी। क्योंकि मैं कान लगाये हुए थी और चिक के गिरने की आवाज़ के साथ

पैर की आहट सुनाई दी। अब मैं प्रतीक्षा कर रही थी कि देखूं क्या होता है। विदित है कि छज्जे पर आये थे, तो बुद्धि अपने कमरे ही पर छोड़ आये थे। एक दम से मैंने एक दबी चीख़ और पैर पटकने की आवाज़ सुनी और साथ ही इस के दबी और घुटी हुई आवाजें और मुंह पीटने की तड़ातड़, जैसे थप्पड़ पड़ रहे हों। बौखला कर साथियों को पुकारा। सारा धैर्य हवा हो गया और एक हड़बूंग-सी मच गई। न मालूम उनके साथी क्या कर रहे थे, परन्तु यह साहिब छज्जे पर पैंतरे बदल रहे थे। साथियों का दबी आवाज़ में शोर मचा कर उनसे कहना कि शोर न मचाओ और उनका अपनी आवाज़ को दबाना और कूदना और फड़फड़ाना। वास्तव में बेचारे बुरी तरह घिरे थे। उधर तो भिड़ें गुस्से में भरी हुईं और इधर छज्जे पर चिकें पड़ी हुईं, मानो भिड़ों के साथ यह बन्द हो गये थे। परेशान होकर छज्जे के इस सिरे का मेरे कमरे का दरवाज़ा पीटने लगे। पलक मारते-मारते इस बुरी तरह से दरवाज़े को धड़धड़ाया कि मुझे भय हुआ कि कहीं यह खुल न जाय, क्योंकि केवल ऊपर की चटखनी लगी हुई थी। वह वैसे ढीली भी थी। नीचे की चटखनी बिगड़ी हुई थी और लगती भी न थी। मेरी दृष्टि चटखनी पर थी और मैं कमरा बन्द कर के जाने वाली हो रही थी कि मुझे भय हुआ कि चटखनी अवश्य खुल जायगी। लपक कर मैं दरवाज़े के पास पहुंची कि जल्दी से चटखनी पक्की कर के कमरा बन्द कर के नीचे जाऊँ कि उन हज़रत ने उधर से धक्का दिया कि दरवाज़ा खुल गया और इधर से मैं तेज़ी से पहुंची और उधर से वे भिड़ों से बचने के लिये घुसे। बस टक्कर होते-होते बची। परन्तु वाह रे स्वभाव कि इस विपत्ति में भी शरारत न छोड़ी। देखते ही मुझ को "कोलतार" कह कर बुरी तरह झपटा। कुशल रही अन्यथा उस दुष्ट ने मुझ को पकड़ ही लिया होता। इस का अनुमान लगाना कठिन है कि मैं किस तरह भागी और झट से कमरा बन्द करके सीधी नीचे पहुँची। सुख का साँस जब लिया, जब अम्मीं जान को पूर्ववत सोते पाया।

जब काफ़ी देर हो गई, तो मैं फिर ऊपर पहुंची। कमरे को खाली पा कर अच्छी तरह बन्द किया। छेद से झाँक कर देखा, तो मेरा मन बेहद खुश हुआ। सारा मुँह साहिब का सूज कर कुप्पा हो रहा था। कुछ दवाई लगाई जा रही थी और दोनों साथी हँसी उड़ा रहे थे। दर्पण हाथ में लिये कह रहे थे कि इसका बदला ऐसा लिया हो कि याद ही करे।' और साथी कह रहे थे कि अब भूलकर भी उस ओर मुँह न करना।

उस दिन के बाद उनका सारा जोश विदा हो लिया और मैंने भी नीरवता ग्रहण कर ली। कुछ दिनों तक तो अपनी शरारत का आनन्द उठाने के उद्देश्य से जा कर छेद में से झाँकती भी रही, परन्तु फिर यह भी धीरे-धीरे कम हो गया। कुछ समय के पश्चात् ये सभी बातें आई गई हो गईं। परन्तु इतना अवश्य था कि मुझे जब कभी भी इन बातों का ख़याल आता, तो मन खुश हो जाता था कि मैंने भी खूब सबक पढ़ाया।

५

जैसा कि मैं कह चुकी हूँ सारी बातें गई बीती हो चुकी थीं और पांच छः महीने बाद तो उनका ख़याल भी पुराना हो गया था कि एक नया ही शगूफ़ा खिला।

दुर्भाग्य से या सौभाग्य से मेरी शादी दो जगह लग कर छूट चुकी थी और अब तीसरी जगह निश्चित हुई थी। जिस से मेरा विवाह निश्चित हुआ था, वह अलीगढ़ में बी० ए० में पढ़ता था। अम्माँ जान को जितनी मेरे विवाह की चिन्ता थी, शायद ही किसी माँ को हो। जब दो बार मेरा विवाह निश्चित हो कर छूट गया था, तो मैं देख ही

चुकी थी कि उनका क्या हाल हुआ था। अब उनके रोने और परेशान होने से मुझे मालूम हो गया कि अवश्य कुछ दाल में काला है। दो बार वे महानुभाव आये, जिनके द्वारा यह शादी निश्चित हो रही थी। बड़ी देर तक बातें हुई थीं। परिणाम बहुत शीघ्र स्पष्ट मालूम हो गया। नौकरानी के बुड़बुड़ाने से मुझे वास्तविकता का पता चल गया। दबी जुबान से काम करने में वह लड़कों को बुरा भला कहती जाती थी। लड़कों की चर्चा से मैं चौंक सी पड़ी और एकदम से मेरे विचार न जाने कहां से कहाँ पहुँच गये। मेरा हृदय बैठ सा गया और ऐसा मन घबराया कि कमरे में आकर मुंह लपेट कर खूब ही रोई। क्योंकि मैं समझ गई कि किस कारण से मेरी सगाई उस जगह से छूटी है। उस शरारती का गम्भीर लहजे में कहना कि सख्त बदला लूँगा। इस प्रकार मेरे और लड़कों के कमरों का एक स्थान पर होना और फिर लड़कों की जुबानें। खुदा उनकी शरारत से बचाये रखे। उस के पश्चात् ही बहुत जल्द लड़कों को निकाल दिया गया। इसी बीच में नौकरानी ने मुझको बिना पूछे या सम्बोधित किये मानो सभी कुछ बता दिया। घटना वास्तव में यूँ थी कि यह सारी कारस्तानी (दुष्टता) उन्हें हज़रत की थी, जिन को मैं ने भिड़ों से कटवाया था। दुर्भाग्य से या सौभाग्य से ये उस लड़के के साथ किसी स्कूल के बोर्डिंग में रह चुके थे, जिसके साथ मेरी सगाई हुई थी। वह उनके पास आया था या उनको कहीं मिला था और उस से उन्होंने न जाने क्या-क्या मेरे सम्बन्ध में तरह-तरह से कह दिया, मेरी आज़ादी और निडरता और शरारत की झूठी कहानियाँ और न मालूम क्या-क्या। सारांश यह कि इस प्रकार उन्होंने मानो भिड़ कटाने का बदला लिया। उसने यहाँ आकर या फिर जुबानी सब ही कुछ सुना होगा क्या मालूम मेरे नाम "कोलतार" से भड़क गया हो। तात्पर्य यह कि अन्त में इन्सान ही था। बहुत कुछ माता-पिता ने ज़ोर लगाया, तो उसने साफ कह दिया कि बात वास्तव में यूं है और वह लड़की ठीक नहीं..........

मैं नहीं कह सकती कि ये सारी बातें सुनकर मेरा क्या हाल हुआ। मुझ पर उस व्यक्ति ने अकारण ही जुल्म किया। इसका अनुमान वही लगा सकती है, जो गरीब हो और शरीफ हो, असहाय और दीन हो और रात दिन अपनी लड़की के व्याह के गम में रो-रोकर जान खो रही हो। यही हाल अम्माँ-जान का था। रोते-रोते उनका बुरा हाल हो गया। जब रोते-रोते थक जाती थीं, तो ठंडी साँस लेकर कहती थीं, "खुदा की शान है कि मैंने अपने किरायादारों को कोई तकलीफ न दी। उन्होंने मेरे साथ बुरा सलूक किया। शायद मेरा घर इसी दिन के लिये उजड़ा था।" यह कहकर फिर वे इस बूरी तरह रोती थीं कि घुट-घुट कर अपनी जान तबाह कर डालती थीं। मेरा यह हाल था कि मारे शर्म के अम्माँ-जान से आँख न मिलाई जाती थी, हालाँकि वे जानती थीं कि जो अभियोग भी मेरे ऊपर लगाये गये हैं, वे सर्वथा झूठ और गलत है और मैं बिल्कुल निर्दोष हूं। किन्तु फिर भी मुझे बेहद शर्म आती थी। मुझे और उन्हें अब दोनों को विश्वास हो गया था कि अब मेरा विवाह कहीं न हो सकेगा। मुझे वैसे अपने विवाह की रत्ती भर चिन्ता न थी, परन्तु यह देख कर मेरा दिल फटा जाता था कि अम्माँ जान अपने आप को इसी गम में समाप्त किये डालती हैं। बहुत ही जल्द घर नरक का नमूना बन गया। उधर वे दिन-रात रोती थीं और इधर मैं उनकी यह दशा देख कर रोती थी। दो-दो समय खाना न पकता था। अम्माँ जान से नौकरानी पूछती कि क्या पकाऊँ, तो वे कह देतीं कि मुझे भूख नहीं और यही मैं कह देती। सारांश घर क्या शोक भवन और स्थायी रूप से शोक-भवन हो रहा था और फिर मुसीबत पर मुसीबत कि कोई उपाय सुमँगल का दिखाई न देता था।

+ + +

मेरी सहेली या मिलने वाली भी कोई न थी, सिवाय एक 'जाहिदा' के। यही मेरे दिल की बातें जानती थी और एक मात्र दुःख बटाने

वाली हार्दिक सखी थी। परन्तु दुर्भाग्य से वह दूसरे शहर में कोसों दूर। मैंने उसे लम्बे समय से कोई पत्र न लिखा था। उसका एक पत्र आया था, जिसमें उसने मेरे विवाह की कुछ चर्चा की थी। उसके उत्तर में मैंने उसको दर्द भरा लम्बा पत्र लिखा। उस पत्र में मैंने आरम्भ से अन्त तक लड़कों की शरारत का किस्सा विस्तार पूर्वक लिखा था और फिर अपनी मुसीबत का रोना रोया था कि किस प्रकार हमारे दुष्ट शरारती किरायादार ने हमारे ऊपर मुसीबत का पहाड़ तोड़ा है और किस प्रकार हम दोनों माँ बेटियों को नरक में डाला है। इस परेशानी का विस्तृत विवरण क्या था, मानो मेरे शोक-भवन अर्थात् घर और मेरे शोक-गृह अर्थात् हृदय के हालात का मुह बोलता चित्र था। यह पत्र मैंने रो-रोकर लिखा था और लिख दिया था कि बहन, आँसू पोंछती जाती हूँ और लिखती जाती हूँ।

+ + +

इस बात को कुछ अधिक समय न बीता था कि अम्माँ जान ने रो-रोकर अपने को बीमार डाल लिया। वे चारपाई पर पड़ी थी। न वे खाती थीं न पीती थीं। उन को ज्वर हो गया और मुसीबत में उन का बीमारी ने यह हाल कर दिया था कि जो देखता, वह यही कहता कि इन्हें दिक 'क्षय रोग' हो गया है। धीरे-धीरे ज्वर अधिक रहने लगा और तबीअत खराब होती चली गई। जब तबीअत अधिक खराब हुई, तो सब ने यही कहा कि दिल्ली जाएँ। वे तो किसी तरह भी न जातीं, परन्तु मेरे रोने-पीटने से वे मान गईं और अपने एक सम्बन्धी के भाई को लेकर दिल्ली पहुँची। कुछ समय तक वहाँ इलाज होता रहा, परन्तु कोई लाभ न हुआ। अपितु हालत और भी खराब हो गई। मैं मानो अम्माँ जान को कब्र में पाँव लटकाये देख रही थी और यह भी जानती थी कि उनके बाद ही बहुत जल्द मेरा नम्बर आयगा। उधर वे रोतीं थीं, इधर मैं। अब शर्म संकोच उठ गया था और मैं कहती थी कि आप खमाह मुखमाह मेरे कारण क्यों ग़म खाती हैं। परन्तु यह सब कुछ बेकार

था। रह-रह कर उन्हीं हज़रत को दुआएँ देती थीं, जिन्होंने मेरी लगी लगाई शादी छुड़ा दी थी। वे बार बार कहती थीं कि "या अल्लाह, मैंने तो कभी उस लड़के को देखा तक नहीं, नाम, तक नहीं जानती, कष्ट देना तो दूर की बात है। फिर आखिर यह मुझसे उसको क्यों दुश्मनी हो गई ?" फिर वे स्वयं ही सिर पकड़ कर बैठ जातीं और कहतीं कि "ये सब भाग्य का लिखा है।" यह कहते-कहते उनकी आँखों से आँसू का दर्या उमड़ आता।

६

थोड़े ही दिनों में दिल्ली के इलाज से जी उकता गया और वापसी हुई। रेल में अधिक भीड़ भाड़ न थी। एक विचित्र घटना का सामना हुआ। एक स्टेशन पर गाड़ी रुकी। क्या देखती हूँ कि एक बीबी से, जो हमारे साथ सफ़र कर रही थीं, वही साहिब खड़े हुए बातें कर रहे हैं। यह बीवी टुण्डला के स्टेशन से हमारे साथ बैठी थीं। अम्माँ जान तो उन हज़रत को पहचानती न थीं, परन्तु नाम मुझ को भी मालूम न था। विदित है कि मेरा उनकी सूरत देख कर क्या हाल हुआ होगा। विशेषतः जब कि वे भी सामने खड़े हों और मुर्दा से भी बुरी हालत में माँ भी सामने हो। घृणा और ऐसी घृणा कि वे भाव मेरे हृदय में जोश मार रहे थे, जो किसी जानी दुश्मन के विरुद्ध ही हो सकते हैं और इसमें कोई संदेह नहीं कि जानी दुश्मनी होने में कोई कसर न थी। गाड़ी चली, तो बीबी से पता चला कि उन का भतीजा है। लखनऊ किसी काम से जा रहा है। परिणाम सुन कर आया है, एफ़. ए. में पास हुआ है। अलीगढ़ में पढ़ता है आदि आदि। इस समय केवल संयोगवश ही मिल गया है, अन्यथा वे अपने नौकर के साथ सफ़र कर

रही हैं।

दूसरे स्टेशन पर फिर वह अपनी चची से बातें करने लगे।

चलते समय मैंने दिल्ली से जाहिदा को पत्र लिखा था। विचार था कि डाक में डलवाऊँगी, परन्तु सफर की जल्दी में दिल्ली में न डलवा सकी और वह रह गया। अब इस समय हठात् याद आया और वह भी जब गाड़ी के सामने ही स्टेशन पर लैटर-बक्स दिखाई पड़ा। जल्दी से मैंने अपने काले रंग के सूट केस जैसे ट्रँक को खोला और उस में से लफ़ाफ़ा निकाला। अभी बन्द न किया था, खोल कर जल्दी से हाशिये पर इतना लिख दिया कि "यह पत्र अब रेल में से डलवा रही हूँ और संयोग की बात है कि मेरा और अम्माँ जान का कातिल भी सामने खड़ा अपनी चची से बातें कर रहा है, जो हमारे साथ सफ़र कर रही हैं। चूंकि मुझको उसकी कमीना सूरत से ही घृणा है, मुझे कुछ वैमनस्य सा हो रहा है, अन्यथा और कुछ लिखती।"

इस पत्र में मैंने इन साहिब के लिये शब्द "कातिल" पहले भी प्रयोग किया था और अपनी जान की परेशानी का विस्तृत हाल लिखा था कि अब वापस जा रही हूँ। जाहिदा जानती ही थी कि यह कातिल कौन है। अम्माँ जान से मैंने कुछ न कहा कि इन बीबी के भतीजे साहिब, जो सामने खड़े हैं, यही हमारी मुसीबत का कारण हुए हैं।

पत्र बन्द कर के मैंने मामा को दे दिया और उन्होंने सामने लैटर-बक्स में डाल दिया। रेल ने सीटी दी और मामा पत्र डाल कर तेजी से अपने डब्बे की ओर चले गये। रेल चलने ही को थी कि इन बीबी ने भी एक कार्ड जल्दी से अपने भतीजे को देकर कहा कि इस को लेटर-बक्स में डाल दो। मैंने देखा कि इधर वे पत्र डालने लैटर-बक्स के पास पहुँचे और उधर गाड़ी चल दी। बीबी कहने लगीं कि "खूब तुम ने अपना पत्र डलवा कर मुझे याद दिलाया, नहीं तो मेरा कार्ड रह ही गया था, जो बहुत आवश्यक था।

\+ \+ \+

मैंने उन हज़रत को लखनऊ स्टेशन तक देखा, वे बराबर प्रत्येक स्टेशन पर अपनी चची से बातें करने आते रहे। मुझ को उसकी सूरत से बहुत घृणा थी।

कानपुर के स्टेशन पर हमें गाड़ी बदलनी पड़ी। घर पहुँच कर मैंने अपना काले रंग का सूटकेस नुमा ट्रंक जो खोला, तो बहुत घबराई। वहाँ बजाय मेरे सामान के साबुन, कालर, टाइयाँ, हजामत बनाने का सामान, दो मर्दाना कमीज और एक सूट के अतिरिक्त और बहुत सी छोटी-छोटी मर्दाना चीजें थीं। ऊपर नीचे चारों ओर ध्यान से देखने पर मालूम हुआ बिल्कुल मेरा ही सा किसी दूसरे का बक्स है। किससे बदल गया यह अनुमान लगाना कठिन था। मै बेहद परेशान हुई और मेरे होश जाते रहे। विशेषतः इस कारण से कि मेरा उस में एक चित्र भी था और फिर मुझ को उन पत्रों का खयाल था, जो जाहिदा के पास से आये थे और फिर सब से अधिक उस पत्र का, जो मैंने सबसे पहले जाहिदा को लिखा था और जिसका उल्लेख कर आई हूँ कि रोती जाती थी, लिखती जाती थी। उस पत्र की एक नकल उसी ट्रंक में थी। मुझ को बड़ा बुरा मालूम हो रहा था, क्योंकि मैं जानती थी कि जिसके हाथ मेरा ट्रंक पड़ेगा, वह मेरी भेद की समस्त बातें, पता आदि सब कुछ जान जायगा। क्योंकि जाहिदा के समस्त पत्र भी उसी में लफाफों के साथ रखे थे, जिन पर मेरे घर का पता लिखा था। बहुत परेशान हो कर रोने लगी, परन्तु भला इस से क्या हो सकता था। अम्माँ जान विवश थीं, मामा जी भी जा चुके थे। मैंने सन्तोष कर लिया।

ट्रंक का खोया जाना थोड़े ही दिनों में पुराना किस्सा हो गया। न मालूम किस का था कि मेरा पता मालूम होने पर भी अपना ट्रंक लेने और मेरा वापस करने न आया।

अम्माँ जान की हालत वैसी ही थी। ख़राब से ख़राब हो रही थी। मामा जी ने डाक्टरों को दिखाया। उन्होंने यह राय प्रस्तुत की कि सौभाग्य की बात है कि खांसी नहीं है, अन्यथा जान की ख़ैर न थी। फिर भी क्षय रोग होने का बहुत डर है, इसलिए पहाड़ पर ले जाओ। बड़ी मुश्किल से अम्माँ जान न मालूम किस तरह स्वस्थ हुईं। परन्तु सच्ची बात यह है कि मुझको उन की जान बचने की तनिक आशा न थी।

पहाड़ ऐसा मनोरम स्थान भी हम को खुश न कर सका। सच है, जब दिल को चैन नहीं होता, तो संसार की कोई वस्तु अच्छी नहीं जान पड़ती। अम्माँ जान महीने भर बाद बिल्कुल घबरा गईं। मैं रोके हुए थी, नहीं तो कब की वापस हो चुकी थीं, परन्तु दिल उचाट हो गया था और तबीअत खराब थी। मै जानती थी कि बस किसी दिन एकदम से असबाब बंधने लगेगा। सारांश, वापसी की दिन रात चर्चा होती।

इसी बीच में एक विचित्र घटना हुई, जिसने समस्त घटनाओं की हालत ही बदल दी। बहुत संक्षेप में वर्णन करती हूँ। मेरी शादी की न तो अब उनको ही कुछ आशा थी न मुझको। एक दिन की बात है कि मामा जी एक तार लाये। मैं खाना पका रही थी। मैंने तार देखा, और वहीं से पकाना छोड़ कर दौड़ी कि या इलाही यह क्या बात है?

कैसा तार है ? मैंने दौड़ कर अम्माँ जान से पूछा । एक विचित्र लहजे में अम्माँ जान ने कहा, "हे, तुम खाना देखो, जाओ, जाओ !"

मैंने एक नजर अम्माँ जान को देखा, फिर मामा जी को । कुछ अजीब सा संदेह हुआ और लज्जित होकर चली आई । न मालूम क्या बातें हुईं । अम्मां जान खुश जान पड़ती थीं । जल्दी से तार का उत्तर तार से दिया गया । मैं चक्कर में थी कि इलाही यह क्या मुआमला है ? क्या कहीं······परन्तु तौबा कीजिये, ऐसा ख़याल भी न आ सकता था । परन्तु अम्माँ जान का चेहरा इस कदर प्रसन्न था कि मुझको कुछ विश्वास सा हो गया और मारे शर्म के मेरी हिम्मत न पड़ी कि उन से कुछ पूछूँ । कई तार दिये गये और दूसरे दिन भी कई तार आये और गये । दूसरे ही दिन सारी बात का पता चल गया । मारे खुशी के अम्माँ जान मुझ से लिपट गईं और इस जोर से दबाया कि मैं घबरा गई । उनकी आँखें भीग गई थीं और मेरी भी यही हालत थी, "या अल्लाह ! तेरा लाख शुक्र है । या अल्लाह, सम्बन्ध का अच्छी तरह से निबाह हो ।" अम्माँ जान ने आँसू पोंछते हुए कहा, और मुझको मालूम हो गया कि मेरी शादी निश्चित हो गई है । असबाब बंधने लगा । किन्तु किस से निश्चित हुई है ? लड़के का नाम क्या है ? क्या करता है ?—ये सब बातें स्वयं अम्माँ जान को भी मालूम न थीं, मुझे क्या मालूम होतीं । बस जो कुछ मालूम था, वह यह कि बरेली वाले चचा के द्वारा विवाह निश्चित हुआ है । अतः आवश्यक है कि उचित जगह होगी ।

अब मैं अम्माँ जान को देखती थी कि दो तीन ही तार आने जाने से उनकी तबीअत की मुर्दनी जाती रही । बजाय घर के एकदम से अम्माँ जान मुझको बरेली लेकर पहुँचीं और वहाँ पहुँच कर अपनी चचेरी बहन से मुझे केवल इतना मालूम हो सका कि जिसके साथ मेरा विवाह हो रहा है, उसका नाम क्या है और क्या करता है और किसका लड़का है और कहाँ का रहने वाला है और बस । इस से अधिक कुछ मालूम न हो सका । आखिर शादी एकदम से कैसे निश्चित हो गई । मेरी शादी

बजाय घर से होने के यहाँ से होनी तै पाई। ये चचा मेरे दिवंगत पिता के चचेरे भाई थे और बरेली में वकालत करते थे। साथ ही यह भी मालूम हुआ कि 'इसी सप्ताह विवाह हो जायगा। अम्माँ का बस न था कि शीघ्र हो जाय। उनको वास्तव में हर दम यही डर रहता था कि कहीं गड़बड़ होकर विवाह छूट न जाय। इस कारण से यह तजवीज थी कि मुझे यहीं से विदा कर दिया जाय। मेरे जहेज का भी कुछ प्रबन्ध न करना था। कारण इसका यह था कि रस्मी जहेज के स्थान पर समस्त मकान, दुकानें सारे घर के सामान सहित, यहाँ तक कि फूटे-घड़े और झाड़ से लेकर मसहरी और लोहे की अलमारी सहित कुल सामान सब मेरे जहेज में शामिल था। फिर भी आवश्यक चीजें और दूसरा सामान अर्थात् विवाह सम्बन्धी चीजें, जो बहुत पहले से घर पर तय्यार रखी थीं, मामा जी ले आये। परन्तु अम्माँ जान कहती थीं, कि बस एक ट्रंक और बिछौना ही केवल घर में मेरा है, बाकी सारा मेरी लड़की का जहेज है।"

शीघ्र ही हमारे मकानों, दूकानों और घर के समान की लम्बी सी सूची तैयार की गई और यही सूची मुझको दहेज के रूप में दी जानी निश्चित हुई, जिसमें प्रत्येक चीज का विस्तृत विवरण मौजूद था।

८

ईमान की बात यह है कि किसी को मौत से बचने की खुशी हो सकती है, तो मुझको अपने विवाह की खुशी थी।

मुझे कोई नई बात मालूम ही न हो सकी। क्योंकि घर में सिवाय मेरी चचेरी बहन के और कोई आयु में बराबर की लड़की ही न थी।

और यह बहन भी आयु में मुझसे छोटी थी। सुनने में आया बरात बहुत संक्षिप्त सी होगी, परन्तु खुदा जाने कहाँ की औरतें घर में फट पड़ीं। गाना बजाना और इस पर शोर गुल। सारांश यह कि आने के चौथे दिन मेरा निकाह् हो गया और उसी दिन विदा हो कर दूल्हा वालों के यहाँ पहुँची।

+ + +

रात का समय था और मुझको छत पर लाकर बिठाया गया। मैं कपड़ों में लिपटी लिपटाई बैठी थी, जबकि मौसम में कुछ ठण्डक आ चली थी, परन्तु मुझे गर्मी जान पड़ रही थी। मैं नहीं कह सकती कि कहाँ थी। चारों ओर औरतों का घेरा था, परन्तु औरतें अधिक न थीं। थोड़ी देर तक तो मेरी हालत अजीब रही, क्योंकि औरतें मेरा मुँह खोल खोल कर देखती थीं, और भाँति-भाँति के रिमार्क्स पास करती थीं, और इधर प्यास के मारे मेरा बुरा हाल था। खुदा का शुक्र है कि जल्दी-जल्दी में मेरी शादी समस्त व्यर्थ रीतियों से मुक्त रही और यहाँ आकर तो मुझको किसी रीति से भी पाला न पड़ा। अब जरा हड़बौंग कम हुई, तो औरतें एक एक करके चली गईं। थोड़ी देर बाद सन्नाटा हो गया और घर की नौकरानी के सिवाय और कोई न रहा। मैंने बड़े सन्तोष से अतिरिक्त चादर विलग कर दी और मुँह खोला।

मैं एक कमरे में थी और सामने कमरे के दरवाजे खुले हुए थे और एक बाग दिखाई दे रहा था। अत्यन्त सुखदायक वायु आ रही थी कि मैंने शीघ्र ही बिजली का पंखा बन्द कर दिया। नौकरानी ने ठण्डा पानी पिलाया और मेरी जान में एक ताजगी सी आ गई। मैं एक मसहरी पर बैठी हुई थी और थकान के कारण सिरहाने तकिया लगाये बैठी थी। नौकरानी मुझसे न जाने कहाँ कहाँ की फुजूल बातें कह रही थी, जो मैं सुन भी न रही थी। खाना आया, तो मैंने ज्यों का त्यों वापस कर दिया। इसके पश्चात फिर संतोष के साथ तकिये का सहारा लेकर

बैठ गई। मेरी दृष्टि बाग की ओर थी, परन्तु विचार न जाने कहाँ थे। मुझको उस समय एक अजीब खुशी थी। इस कारण से नहीं कि मेरी शादी हो गई, अपितु बार-बार जीवन की समस्त विगत घटनाएँ जो कटुता से भरी हुई थीं, एक एक करके सामने आ रही थीं और फिर अन्त में परिणाम यह कि मैं यहाँ बैठी हुई हूँ, जिसकी मुझको और अम्माँ-जान को संभावना भी न थी। कहाँ तो मौत सामने थी और कहाँ हालत सर्वथा खुदा ने बदल दी। मैं खुदा की कृपा और अनुकम्पा पर विचार कर रही थी कि मेरी शादी तीन जगह निश्चित हुई और किस तरह छूट गई और फिर होनी भी थी, तो यों। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि इन विचारों की उधेड़-बुन में उन साहिब का खयाल आता था, तो मेरी क्या हाल होता थीं ? घृणा के भाव सफलता की खुशी में मिल कर अजीब ही रंग पैदा करते थे। शुक्र करती थी कि खुदा ने उस दुष्ट को असफल और मुझको सफल बनाया।

+ + +

मैं इन्हीं विचारों में डूबी हुई थी कि ऊँघ गई। भाँति-भाँति के स्वप्न मैंने अत्यन्त थोड़े समय में देख डाले। कभी अपने आपको घर पर देखा कि छेद में से उस शरारती दुष्ट को देख रही हूँ, कभी स्टेशन पर पत्र डालने का दृश्य आँखों के सामने है। रह रह कर मैं देखती थी कि मुझको खुदा ने समस्त मुसीबतों से छुड़ाया। एक एक मुसीबत सामने आती थी और प्रत्येक नये दृश्य के पश्चात् उस दुष्ट के विरुद्ध घृणा बढ़ती थी, जिसने मेरा जीवन तबाह करने में कोई कसर न उठा रखी थी।

इसी नींद में देखते देखते क्या देखती हूँ कि वही दुष्ट काली धारी का सूट पहने खड़ा है, जैसा कि अन्तिम बार मैंने स्टेशन पर उसे अपनी मंगी से बातें करते देखा था। एक शरारत भरी दुष्टता की मुस्कराहट प्रकट थी। तेज और शरारती आँखें जैसे शरारत का कोई पहलू ढूंढ रही हैं। यह मैंने एक दूरी ही से देखा और अत्यन्त घृणा के साथ दिल

में कहा, कि तुम मेरा कुछ न बिगाड़ सके। एक दम से क्या देखती हूँ कि ये शब्द उस दुष्ट ने सुन लिये, हालाँकि ये शब्द मैंने दिल में कहे थे और मुझे बुरी तरह घूर कर बोला—"कोलतार! क्या कहा? क्या मैं कुछ नहीं कर सकता?"

"तुम कुछ नहीं कर सकते।" मैंने कपकपाई हुई आवाज में अत्यन्त क्रोध और घृणा से कहा, "तुम मेरा कुछ नहीं कर सकते।"

"ठहर तो जा कोलतार······" कड़े शरारत-भरे लहजे में उसने कहा। चेहरे से मालूम हो रहा था कि कोई शरारत दिमाग में है और मेरा यह हाल था कि हालांकि यह सब स्वप्न की घटनाएं थीं, परन्तु इस घृण्य शक्ल को देख कर मारे क्रोध से कांप रही थी।

इतने में नौकरानी ने मेरी भुजा पकड़ कर हिला दिया और न मालूम चुपके से क्या कहा। मैं चौंक पड़ी, परन्तु समझ गई और झट से फिर उसी तरह ओढ़ सिमट कर घुटनों में मुँह छिपा कर बैठ गई।

मेरा हृदय तेजी से धड़क रहा था। बड़ी देर तक इसी तरह बैठी रही कि फिर मेरे मस्तिष्क में वही विचारों की भीड़ लग गई। फिर वही घृण्य शक्ल मानो मेरे सामने थी। रह रह कर मुझे उस व्यक्ति की खयाली सूरत देख-देख कर घृणा आ रही थी। प्रत्येक चीज उसकी घृण्य जान पड़ती थी क्या उसने मेरे और मेरी अम्माँ-जान के प्राण लेने में कोई कसर उठा रखी थी? जब यह खयाल करती, तो खून उबलने लगता था।

मैं इसी खयाल में थी कि किसी के आने की कमरे में आहट हुई। मैं मानो उछल पड़ी और फिर हृदय धड़कने लगा। मैं समझ गई कि आने वाला कौन है।

\+ \+ \+

मैंने किसी के अपने निकट आने की आहट सुनी। मेरा दिल बाँसों उछल रहा था और एक वर्णनातीत परेशानी कि इतने में आने वाले

ने मेरे कन्धे पर हाथ रखा······कान के पास मुँह कर के कहा, "कोल-तार साहिब, सलाम-अलैकुम।"

मेरे ऊपर मानो बिजली गिरी और मैं चौंक पड़ी। ग़नीमत हुआ कि चीखी नहीं। अंग-अंग में कपकपी थी और शरीर में एक सनसनी दौड़ गई।

जिस व्यक्ति का ख़याल मेरे दिल में था, जिसको स्वप्न मैंने अभी-अभी देखा था और जिसके विरुद्ध अत्यन्त घृणा के भाव भी हृदय में भरे पड़े थे क्या यह वही नहीं है!!······यह लहजा, यह शरारत-भरा लहजा मेरे लिए नया न था। मैं खूब जानती थी।

"क्या यह वही व्यक्ति नहीं, जिसने मेरी अम्माँ-जान का जीवन कटुता से भर दिया था······या अल्लाह, इससे तो असीम घृणा थी···परन्तु अब······!"

पलक मारते ही उपर्युक्त विचार मेरे दिमाग़ में आये और गये और इससे पहले कि मैं इस महान् क्रांति पर विचार करूँ, फिर उसी प्रियतम व्यक्ति ने कहा, "अजी कोलतार साहिब······क्या हाल है···वह भिड़ों का छत्ता······मेरे सारे मुँह पर लिपट गई थीं······जनाब कोलतार साहिब······किब्ला······अजी किराया ले जाइये······।"

सारांश, बहुत कुछ कंधा पकड़ कर मुझे हिलाया-जुलाया, परन्तु यहाँ जवाब नदारद।

—मिर्ज़ा अज़ीम बेग चग़ताई

सवेरे जो कल आँख मेरी खुली

गीदड़ की मौत आती है, तो शहर की ओर दौड़ता है। हमारी जो शामत आई, तो एक दिन अपने पड़ोसी लाला कृपाशंकर जी ब्रह्मचारी से प्रसंगानुसार कह बैठे कि "लाला जी परीक्षा के दिन निकट आते जाते हैं, आप प्रभात के समय जाग उठते हैं, जरा हमें भी जगा दिया कीजिये।"

वे महोदय भी, मालूम होता है, इन्हीं शब्दोंके भूखे बैठे थे दूसरे दिन उठते ही उन्होंने ईश्वर का नाम ले कर हमारे दरवाजे पर, मुक्काबाजी आरंभ कर दी। कुछ क्षण तक तो हम समझे कि स्वप्न-जगत् में हैं। अभी से क्या चिन्ता है। जागेंगे तो लाहौल पढ़ लेंगे—प्रायश्चित्त कर लेंगे। परन्तु यह गोला-बारी क्षण प्रति क्षण तेज होती गई। और श्रीमान! जब कमरे की चोबी (लकड़ी की) दीवारें काँपने लगीं, सुराही पर रखा हुआ गिलास जल-तरंग की तरह बजने लगा और दीवार पर लटका हुआ कैलण्डर पेण्डुलम की भाँति हिलने लगा, तो मुझे अपने जागरण पर विश्वास करना ही पड़ा। किन्तु अब दरवाजा है कि लगातार खटखटाया जा रहा है। मैं क्या मेरे पूर्वजों—दादा, नगड़-दादा—की रूहें और मेरा सोया हुआ भाग्य तक जाग उठा होगा। बहुतेरी आवाजें देता हूं... अच्छा ...अच्छा......थैंक यू !...जाग गया हूँ ...बहुत अच्छा! आप ने कृपा की...धन्यवाद। लाला जी हैं कि सुनते ही नहीं, प्रभु! किस विपत्ति का सामना है? ये सोते को जगा रहे हैं या मुर्दे को जिला रहे हैं? और महा मान्य ईसा भी तो बस उचित रूप से हल्की सी आवाज में "कुम" (उत्तिष्ठ) कह दिया करते होंगे। जी उठा तो जी उठा, नहीं तो छोड़ दिया। कोई मुर्दे के पीछे लट्ठ ले के पड़ जाया करते थे? तोपें थोड़ी दागा करते थे? यह तो भला हम से कैसे हो

सकता था कि उठ कर दरवाजे की चटखनी खोल देते ? इस से पहले, कि बिस्तरे से बाहर निकलें, दिल को कितना समझाना बुझाना पड़ता है इसका अनुमान कुछ रसिक मनीषी कर सकते हैं । अन्त में जब लैम्प जलाया और उनको बाहर से रोशनी नजर आई, तो तूफ़ान थमा।

अब जो यह खिड़की में से आकाश को देखते हैं, तो जनाब ! सितारे हैं कि जगमगा रहे हैं । सोचा कि आज पता चलायेंगे, यह सूरज आखिर किस तरह से निकलता है । परन्तु जब घूम-घूम कर खिड़की में से और झरोखे में से चारों ओर देखा और गुरुजनों से प्रभात की जितनी निशा-नियां सुनी थी, उन में से एक भी कहीं दिखाई न दी, तो चिन्ता सी लग गई कि आज कहीं सूर्य-ग्रहण न हो ? कुछ समझ में न आया, तो पड़ोसी को आवाज दी ।

"लाला जी ! ...लाला जी ..."।'

"जवाब आया—"हूं" ।

मैंने कहा—"आज यह क्या बात है, कुछ अंधेरा सा है ?"

कहने लगे—"तो और क्या तीन बजे ही सूर्य निकल आय ?"

तीन बजे का नाम सुन कर होश गुम हो गये । चौंक कर पूछा, "क्या कहा तुमने ? तीन बजे हैं ?"

कहने लगे—"तीन...तो...नहीं...कुछ सात...साढ़े सात मिनट ऊपर तीन हैं ।"

मैंने कहा—"अरे कमबख्त, खुदाई फौजदार, बदतमीज कहीं के, मैंने तुम से यह कहा था कि सुबह जगा देना या यह कहा था कि सिरे से सोने ही न देना ? तीन बजे जागना ही शराफ़त है ? हमें तू ने कोई रेलवे गार्ड समझ रखा है ? तीन बजे हम उठ सका करते, तो इस समय पूज्य दादा के अनन्य प्रिय न होते ? अबे मूर्ख कहीं के, तीन बजे उठ के हम जीवित रह सकते हैं ? धनी बाप के बेटे हैं, कोई मजाक है ?

दिल तो चाहता है कि अहिंसा और हिंसा दोनों को तिलांजली दे

दूं। परन्तु फिर ख़याल आया कि मनुष्य मात्र के सुधार का ठेका कोई हमीं ने ले रखा है। हमें अपने काम से मतलब। लैम्प बुझाया और बुड़-बुड़ाते हुए फिर सो गये।

और फिर दैनन्दिन की भांति अत्यन्त संतोष-शान्ति के साथ भले आदमियों की तरह दस बजे उठे। बारह बजे तक मुँह हाथ धोया और चार बजे चाय पी कर ठण्डी सड़क की सैर को निकल गये।

सायं के समय वापस होस्टल में पहुंचे। जवानी का जोश तो है ही, इस पर सायं का अरमान भरा समय। पवन भी मन्द-मन्द चल रहा था। मन भी ज़रा मचला हुआ था! हम ज़रा तरंग में गाते हुए कमरे में दाखिल हुए—

"बलाएँ ज़ुल्फ़-फ़ज़ानाँ[1] की अगर लेते तो हम लेते।"

कि इतने में पड़ोसी की आवाज आई—

"मिस्टर!"

हम उस समय ज़रा चुटकी बजाने लगे थे, बस उंगलियां वहीं की वहीं रुक गईं और कान आवाज़ की ओर लग गये। वे बोले, "यह आप गा रहे हैं? [ज़ोर "आप" पर]

मैंने कहा—"अजी मैं किस योग्य हूं, किन्तु, हाँ आप कहिये।"

बोले—"ज़रा...देखिये मैं...मैं डिस्टर्ब होता हूं।"

बस साहिब हम में जो संगीत की आत्मा पैदा हुई थी तत्काल मर गई। दिल ने कहा, "ओ दुष्ट मानव! देख, पढ़ने वाले यूं पढ़ते हैं।"

फिर क्या था, श्रीमान जी हमने भगवान के सामने गिड़गिड़ा कर प्रार्थना की,—"भगवन! हम भी अब नियमित रूप से अध्ययन आरंभ करने वाले हैं, हमारी सहायता कर और हमें शक्ति दे।"

आँसू पोंछ कर और दिल को पक्का कर के मेज के सामने आ बैठे। दांत भींच लिये। नकटाई खोल दी। आस्तीनें चढ़ा लीं, परन्तु कुछ

---

१. प्रेमिका की अलकें

समझ में न आया कि करें क्या ? सामने लाल, हरी, पीली सभी प्रकार की किताबों का ढेर लगा था। अब इनमें से कौनसी पढ़ें ? निश्चय यह हुआ कि पहले किताबों को क्रम से मेज पर लगा दें, क्योंकि नियम-पूर्वक अध्ययन की पहली मंजिल यही है।

बड़ी लम्बाई-चौड़ाई की पुस्तकों को अलग रख दिया। छोटी लम्बाई चौड़ाई की किताबों को साइज के अनुसार अलग पाँति में खड़ा कर दिया एक नोट-पेपर पर प्रत्येक पुस्तक के पृष्ठों की संख्या लिख कर सब को जमा किया। फिर १५ अप्रैल तक के दिन गिने पृष्ठों की संख्या को दिनों की संख्या से विभाजित किया। साढ़े पाँच सौ उत्तर आया। परन्तु घबराहट की क्या मजाल जो चेहरे पर प्रकट हो पाय। मन में कुछ थोड़ा सा पछताये, कि प्रातः तीन ही बजे क्यों न उठ बैठें। परन्तु अनिन्द्रा के आयुर्वेदिक पहलू पर विचार किया, तो तुरन्त अपने आप को फटकारा। अन्त में इस परिणाम पर पहुंचे कि तीन बजे उठना तो निरर्थक बात है, हाँ पाँच, छः, सात बजे के लगभग उठना बहुत ही उचित होगा। स्वास्थ्य बना रहेगा और परीक्षा की तैयारी भी नियमित रूप से होगी।—एक पथ दो काज।

यह तो हम जानते हैं कि सवेरे उठना हो, तो जल्दी सो जाना चाहिये। खाना बाहर ही से खा आये थे। बिस्तर में घुस गये।

चलते-चलते ख्याल आया कि लाला जी से जगाने के लिए कह ही न दें ? यूं हमारी अपनी इच्छा-शक्ति पर्याप्त बलवती है। जब चाहें उठ सकते हैं, परन्तु फिर भी क्या हानि है ? डरते-डरते आवाज दी—"लाला जी।"

उन्होंने पत्थर खींच मारा—"येस !"

हम और भी सहम गये कि लाला जी कुछ नाराज मालूम होते हैं। तुतला कर निवेदन किया—"लाला जी ! प्रातः आप को बड़ा कष्ट हुआ मैं आपका बहुत आभारी हूं। कल यदि जरा मुझे छः बजे अर्थात् जिस समय छः बजें..."

कोई उत्तर न मिला।

मैंने फिर कहा—"जब छः बज चुकें, तो ......सुना आप ने ?"

चुप।

"लाला जी !"

कड़कती हुई आवाज़ ने उत्तर दिया—"सुन लिया। सुन लिया। छः बजे जगा दूंगा। थ्री गामा प्लस और एलफा प्लस..."

हमने कहा—"ब...ब...ब...बहुत अच्छा, यह बात है।"

"तौबा। खुदा किसी का मुहताज न करे।"

लाला जी आदमी बहुत शरीफ़ हैं। अपने वअ'दा[१] के अनुसार दूसरे दिन प्रातः छः बजे उन्होंने दरवाज़े पर घूंसों की वर्षा आरंभ कर दी। उनका जगाना तो केवल एक सहारा था। हम स्वयं ही प्रतीक्षा में थे कि यह स्वप्न समाप्त हो ले, तो बस जागते हैं। वे न जगाते तो मैं स्वयं एक दो मिनट के पश्चात आँखें खोल देता। खैर जैसा कि मेरा कर्तव्य था, मैंने उनका धन्यवाद किया। उन्होंने इसे इस रूप में स्वीकार किया कि गोला-बारी बन्द कर दी।

इसके बाद की घटनाएँ ज़रा विचारनीय हैं और बहस चाहती हैं। उन से सम्बन्धित कथाओं में कुछ भिभिन्नता है। कुछ भी हो इस बात का तो मुझे विश्वास है और मैं सौगन्ध भी खा सकता हूं कि आँखें मैंने खोल दी थीं। फिर यह भी याद है कि एक नेक और सच्चे मुसलमान की तरह कलमए-शहादत [साक्षी-सूचक मन्त्र] भी पढ़ा। फिर यह भी याद है कि उठने से पहले भूमिका के रूप में एक आध करवट भी ली। फिर का पता नहीं। शायद लिहाफ़ ऊपर से उतार दिया, शायद सिर उस में लपेट लिया। शायद खाँसा, कि भगवान जाने खर्राटा लिया। खैर यह तो निश्चय बात है कि दस बजे हम बिल्कुल जाग रहे थे।

१, शुद्ध उच्चारण "वअ'दा" (Wa'da) है; "वा-यदा" नहीं जो बिना सोचे समझे प्रचलित हो गया है—'प्रभाकर'

परन्तु लाला जी के जगाने के पश्चात् और दस बजे से पूर्व भगवान जाने हम पढ़ रहे थे या शायद सो रहे थे। नहीं, हमारा ख़याल है, पढ़ रहे थे। या शायद सो रहे हों। कुछ भी हो यह मनोविज्ञान की समस्या है, जिस में न आप विशेषज्ञ हैं न मैं। क्या पता लाला जी ने जगाया ही दस बजे हो या उस दिन छः देर से बजे हों। भगवान के कामों में हम और आप क्या हस्तक्षेप कर सकते हैं। परन्तु हमारे दिल में दिन भर यह संदेह रहा कि दोष कुछ अपना ही जान पड़ता है।

जनाब की शराफत देखिये कि केवल इस संदेह के आधार पर प्रातः से सायं तक अन्तःकरण की फटकारें सुनता रहा और अपने आप को कोसता रहा। किन्तु लाला जी से हँस-हँस कर बातें कीं। उनका धन्यवाद किया और इस विचार से कि उनका हृदय भग्न न हो, अतीव संतोष प्रकट किया कि "आप की कृपा से मैंने प्रातः का सुहावना और आनन्द-दायक समय बहुत अच्छी तरह व्यतीत किया, अन्यथा और दिनों की भाँति आज भी दस बजे उठता। लाला जी! प्रातः समय मस्तिष्क क्या स्वच्छ होता है, जो पढ़ो खुदा की क़सम तत्काल याद हो जाता है। भई खुदा ने सुब्ह भी क्या अजीब चीज पैदा की है अर्थात् यदि सुब्ह की बजाय शुब्ह-सुब्ह शाम हुआ करती, तो दिन क्या बुरी तरह कटा करता।

लाला जी ने हमारे जादू भरे वक्तव्य के प्रति इस प्रकार प्रशंसा प्रकट की कि आप पूछने लगे—

"तो मैं आपको छः बजे जगा दिया करूं ना?"

मैंने कहा—"हाँ, हाँ! वाह, यह भी कोई पूछने की बात है? अवश्य जगाइये।"

सन्ध्या के समय आने वाले प्रातः की पढ़ाई के लिये दो पुस्तकें छांट कर मेज पर अलग जोड़ दीं। कुर्सी को चारपाई के निकट सरका लिया। ओवर-कोट और गुलूबन्द को कुर्सी की पीठ पर लटका दिया। कनटोप और दस्ताने पास ही रख लिये। दीयासलाई को सिरहाने के नीचे टटोला तीन बार कुरआन की एक विशेष पवित्र आयत पढ़ी और मन में एक

अत्यन्त ही शुभ संकल्प बाँध कर सो गया।

प्रातः लाला जी के दरवाजे को जरा थपथपाते ही झट आँख खुल गई। अत्यन्त पुलकित भाव से लिहाफ़ की एक खिड़की में से उनको "गुड मार्निंग" किया और अतीव निर्दयता-पूर्वक लहजे में खांसा। लाला जी सन्तुष्ट होकर वापस चले गये।

हमने अपनी हिम्मत और अपूर्व साहस को बहुत सराहा, कि आज हम तुरन्त ही जाग उठे। दिल से कहा—"दिल भय्या, प्रातः समय उठना तो केवल जरा सी बात है, हम यूं ही इससे डरा करते थे।"

दिल ने कहा—"और क्या? तुम्हारे तो यूं ही होश उड़ जाया करते हैं।"

हमने कहा—"सच कहते हो यार अर्थात् यदि हम सुस्ती और आलस्य को स्वयं अपने निकट न आने दें, तो उनकी क्या मजाल है, जो हमारी बाक़ाइदगी१ में बाधा डाल सकें। इस समय लाहौर शहर में हजारों ऐसे आलसी लोग होंगे, जो संसार और संसार में होने वाली बातों से बेख़बर नींद के मजे उड़ाते होंगे और एक हम हैं कि कर्तव्य-पालन के लिए अत्यन्त पुलकित हृदय और मुस्कराती मुखाकृति से जाग रहे हैं। भई क्या बरखुरदार सिद्ध हुए हैं! नाक को सर्दी सी अनुभव होने लगी, तो उसे ज़रा यूं ही सा लिहाफ़ की ओट में कर लिया और फिर सोचने लगे—

"ख़ूब, तो हम आज क्या समय पर जागे हैं। बस ज़रा इसका अभ्यास हो जाय, तो नियम-पूर्वक क़ुरआन मजीद की तिलावत१ और फ़ज्र२ की नमाज़ भी आरम्भ कर देंगे। आख़िर मज़हब सब से पहले और उच्च है। हम भी क्या दिन प्रति दिन नास्तिकता की ओर झुकते जाते हैं। न ख़ुदा का डर न रसूल का भय। समझते हैं कि बस अपने परिश्रम ही से परीक्षा पास कर लेंगे। अकबर बेचारा यही कहता-कहता

---

१. शुद्ध उच्चारण "बाक़ाइदा" है "बाक़ा-यदा" नहीं।

मर गया। परन्तु हमारे कान पर जूं तक न चली..."

(लिहाफ़ कानों पर सरक आया)

"तो मानो आज हम और लोगों से पहले जागे हैं...बहुत ही पहले ...अर्थात् कालेज आरम्भ होने से भी चार घण्टे पहले...क्या बात है? कालेज के अधिकारी भी कितने सुस्त हैं। प्रत्येक उद्यम-शील मनुष्य को छ: बजे तक पूर्णत: जाग उठना चाहिये। समझ में नहीं आता कि कालेज सात बजे क्यों न शुरू हुआ करे..."

[लिहाफ़ सिर पर आ गया]

"बात यह है कि नवीन सभ्यता हमारी समस्त उच्च शक्तियों का उन्मूलन कर रही है। विलासता दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है [आँखें बन्द]...तो अब छ: बजे हैं। मानो तीन घण्टे तो अविरल अध्ययन किया जा सकता है। प्रश्न केवल यह है कि पहले कौन सी किताब पढ़ें। शेकस्पियर या वर्डसूवर्थ? मैं जानूं शेकस्पियर अच्छा रहेगा। उसकी शानदार कृतियों में ईश्वर की महिमा के तत्त्व दिखाई देते हैं और सुब्ह के वक्त अल्लाह मियां की याद से अच्छी चीज़ क्या हो सकती है?

"फिर ख़याल आया कि दिन का भावों के बवंडर-स्थान से श्री गणेश करना ठीक विचार नहीं—युक्ति-युक्त भी नहीं। वर्डसूवर्थ पढ़ें। उस के पृष्ठों में मन को शान्ति और संतोष प्राप्त होगा, हृदय और मस्तिष्क नेचर की मौन मनोज्ञताओं से हल्के हल्के आनन्दित होंगे...... परन्तु शेकस्पियर...नहीं वर्डसूवर्थ ही ठीक रहेगा...शेकस्पियर—हेमलेट ...किन्तु वर्डसवर्थ...टेनीसन...उन्माद...हरी हरी घास के मैदान... बसन्त-पवन......काम का शिकार......काश्मीर......मैं आफ़त का परकाला हूं......"

यह पहेली आध्यात्म विद्या ही से सम्बन्ध रखती है।...फिर जो हमने लिहाफ़ से सिर बाहर निकाला और वर्डस्वर्थ पढ़ने का इरादा किया

---

१. पाठ २. प्रभात

तो वही दस बज रहे थे। इसमें नामालूम क्या भेद है ?

कालेज हाल में लाला जी मिले। कहने लगे, "मिस्टर ! प्रातः मैंने आप को आवाज़ दी थी। आपने उत्तर न दिया ?"

मैंने ज़ोर का ठहाका लगा कर कहा, "ओहो ! लाला जी याद नहीं, मैंने आपको गुडमार्निंग कहा था ? मैं तो पहले ही से जाग रहा था।"

बोले—"वह तो ठीक है ! परन्तु बाद में...उसके बाद...कोई सात बजे के लगभग, मैंने आप से तारीख पूछी, आप बोले ही नहीं।"

हमने अत्यन्त आश्चर्य की दृष्टि से उनको देखा। मानो वे पागल हो गये हैं और ज़रा गंभीर चेहरा बना कर माथे पर तेवरी चढ़ाए सोच-विचार में डूब गये। एक आध मिनट हम इस गहराई में रहे। फिर हठात् एक रहस्यमय प्यारे अन्दाज़ से मुस्करा कर कहा—हाँ ठीक है, ठीक है। मैं उस समय...ए...ए...नमाज पढ़ रहा था।

लाला जी प्रभाव में दब कर चल दिये। और हम अपने यतित्व और पवित्रता की हीनता में सिर नीचा किये कमरे की ओर चले आये।

अब यही हमारा प्रतिदिन का ढर्रा हो गया—जागना नं० १ छः बजे, जागना नं० २ दस बजे, इस बीच में लाला जी आवाज़ दें, तो नमाज़।

जब दिवंगत हृदय आशा-आकांक्षाओं का पूरा जगत् था, तो यूँ जागने की कामना किया करते थे कि "हमारा गौरवमय सिर सिरहाने पर अल्प निद्रासक्त हो"। और सूर्य की पहली किरणें हमारे काले घुँघराले बालों पर बिखर रही हों। कमरे में फूलों की प्रात:कालीन सुगन्धि मन को विभोर कर रही हो। कोमल और सुन्दर हाथ अपनी उंगलियों से वीणा के तारों को हल्के-हल्के छेड़ रहे हों और प्रणय में डूबी हुई सुरीली और मधुर आवाज़ मुसकुराती हुई गा रही हो—

"तुम जागो मोहन प्यारे"

स्वप्न की सुनहली धुन्ध धीरे-धीरे संगीत की लहरों में विलीन हो जाय और जागृति एक मनोहर जादू की भाँति अंधकार की सूक्ष्म यव-

निका को नीरवता पूर्वक टुकड़े टुकड़े कर दे। चेहरा किसी की उत्सुकता पूर्ण दृष्टि की गर्मी अनुभव कर रहा हो। आँखें मन्त्र-मुग्ध होकर खुलें और चार हो जायें। चित्ताकर्षक मुसकान प्रातः को और भी चमका दे और गीत—

"साँवरी सूरत तोरी मन को भाई"

के साथ ही लज्जा व संकोच में डूब जाय। पर भाग्य में यह है कि पहले "मिस्टर! मिस्टर! की आवाज़ और दरवाजे की दनादन कानों में पड़ती है और फिर चार घण्टे बाद कालेज का घड़ियाल मस्तिष्क की नस-नस में दस बजाना आरंभ कर देता है और इस चार घण्टे की अवधि में गड़वियों के गिर पड़ने—देगचियों के उलट जाने, दरवाजों के बन्द होने, किताबों के झाड़ने, कुर्सियों के घसीटने, कुल्लियाँ गरगरे करने खँखारने और खाँसने की आवाजें तो मानो अनायास ठुमरियाँ हैं। अनुमान कर लीजिये कि इन वाद्यों में सुरताल की कितनी गुंजाइश है!

मौत मुझ को दिखाई देती है,
जब तबीअत१ को देखता हूँ मैं।

—ए० एस० बुख़ारी "पतरस"

---

१. शुद्ध उच्चार "तबीअत" है, "तबियत" नहीं।

चचा छक्कन ने चित्र टाँगा

चचा छक्कन कभी कभी कोई काम अपने जिम्मे ले लेते हैं, तो घर भर को तिगनी का नाच नचा देते हे। आ, बे लौंडे, जा, बे लौंडे। यह कीजो, वह कीजो। घर बाज़ार, एक हो जाता है। दूर क्यों जाओ। परसों परले दिन की बात है। दुकान से चित्र का चोखटा लगकर आया। उस समय तो दीवानखाने में रख दिया गया। कल सायं कहीं चची की दृष्टि उस पर पड़ी। बोलीं—"छट्टन के अब्बा! चित्र कब से रखा हुआ हे। खैर से बच्चों का घर ठहरा। कहीं टूट फूट गया, तो बैठे बिठाये रुपये दो रुपये का धक्का लग जायगा। कौन टाँगेगा इस को ?"

"टाँगता और कौन ? मैं स्वयं ही टाँगूंगा, कौन ऐसी पर्वत का सीना चीर कर दूध की नहर निकाल लानी है। रहने दो, मैं अभी सब कुछ स्वयं ही किये लेता हूँ।"

कहने के साथ ही शेरवानी उतार कर चचा चित्र टाँगने पर तुल गये। 'अमामी से कहा—"बीबी से दो आने पैसे लेकर कीलें ले आ।"

इधर वह दरवाजे से निकला, उधर 'मोदे' से कहा—"मोदे, मोदे! जाना अगामी के पीछे। कहियो तीन तीन इञ्च की हों कीलें। भागकर जा। जा लीजो उसे रास्ते ही में।"

लीजिये चित्र टांगने का सूत्रपात हो गया और अब आई घर की शामत।

नन्हे को पुकारा, "ओ नन्हे, जाना ज़रा मेरा हथौड़ा ले आना। नब्बो जाओ! अपने बस्ते में से लकड़ी का फुट्टा निकाल लाओ और सीढ़ी की आवश्यकता भी तो होगी हम को। अरे भाई लल्लो! ज़रा

तुम जाकर किसी से कह देते सीढ़ी यहाँ लाकर लगा दे और हाँ देखना वह लकड़ी के तख्ते वाली कुर्सी भी लेते आते, तो खूब होता। छुट्टन बेटे! चाय पीली तुमने? ज़रा जाना तो अपने पड़ोसी मीर बाकर अली के घर। कहना अब्बा ने सलाम कहा है और पूछा है, आपकी टाँग अब कैसी है और यह कहियो, वह जो है ना आपके पास, क्या नाम है उसका। ऐ लो भूल गया। पलोल था कि टलोल, अल्लाह जाने क्या था। खैर वह कुछ ही था, तो यूँ कह दीजो कि वह जो आपके पास यन्त्र है ना, जिससे सीध मालूम होती है, वह ज़रा दे दीजिये। चित्र टाँगना है। जाइयो मेरे बेटे। पर देखना सलाम ज़रूर करना और टाँग का पूछना न भूल जाना, अच्छा?···यह तुम कहाँ चल दिये लल्लो? कहा जो है, ज़रा यहीं ठहरे रहो। सीढ़ी पर रोशनी कौन दिखायगा हमको? क्या मामी ले आया कीलें? मोदा मिल गया था? तीन-तीन इञ्च की हैं ना? बस बहुत ठीक है। ऐ लो सुतली मँगवाने का तो ख़याल ही न रहा, अब क्या करूँ? जाना मेरा भाई जल्दी से हवा की तरह जा और देखियो, बस गज सवा गज हो सुतली। न बहुत मोटी हो न बहुत पतली। कह देना चित्र टाँगने को चाहिये। हय, ले आया? और दद्दो! दद्दो कहाँ गया? दद्दो मियाँ! इस समय सब को अपने-अपने काम की सूझी है। यूं नहीं कि आकर हाथ बटाएं। यहाँ आओ, तुम कुर्सी पर चढ़ कर मुझे चित्र पकड़ाना।"

लीजिये साहिब ख़ुदा ख़ुदा कर के चित्र उठाने का समय आया। परन्तु होनहार की बात! चचा उसे उठा कर ज़रा तोल ही रहे थे कि हाथ से छूट गया। गिर कर शीशा चकनाचूर हो गया। "हुई है" कह कर सब एक दूसरे का मुँह तकने लगे। चचा ने कुछ लज्जित हो कर शीशे की किरिचों का निरीक्षण आरम्भ कर दिया। समय की बात, उँगली में शीशा चुभ गया। रक्त की धारा छूट पड़ी। चित्र को भूलकर अपना रूमाल ढूँढने लगे। रूमाल कहाँ से मिले? रूमाल था शेरवानी की जेब में। शेरवानी उतार कर न जाने कहाँ रखी थी। अब

जनाब घर भर ने चित्र टाँगने का सामान ताखा पर रखा, और शेरवानी की खोज होने लगी। चचा मियाँ कमरे में नाचते फिर रहे हैं। कभी इस से टक्कर खाते हैं कभी उस से।

सारे घर में से किसी को इतनी सामर्थ्य, नहीं कि मेरी शेरवानी ढूंढ निकाले। आयु भर ऐसे निकम्मो से पाला न पड़ा था। और क्या झूठ कहता हूँ कुछ ? छ, छ, आदमी हैं, और एक शेरवानी नहीं ढूंढ सकते, जो अभी पाँच मिनट भी तो नहीं हुए मैंने उतार कर रखी है। भई बंड़े......।"

इतने मे आप किसी जगह से बैठे-बैठे उठते हैं और देखते है कि शेरवानी पर ही बैठे हुए थे। अब पुकार पुकार कर कह रहे हैं—

"अरे भई, रहने देना। मिल गई शेरवानी। ढूंढ ली हमने। तुम को तो आंखो के सामने बैल भी खड़ा हो, तो दिखाई नँही पड़ता।"

आध घटे तक उंगली बंधती बन्धाती रही। नया शीशा मँगया कर चौखटे में जड़ा और सारे झंझट सम्पन्न करने पर दो घटे बाद फिर चित्र टाँगने का अवसर उपस्थित हुआ। यन्त्र आये, सीढ़ी आई, चौकी आई, दीया लाया गया। चचा जान सीढ़ी पर चढ़ रहे है और घर भर (जिसमें धाय और कहारी भी शामिल हैं) अर्धवृत्त के आकार में सहायता देने को कील काँटे से लैस खड़ा है। दो आदमियों ने सीढ़ी पकड़ी, तो चचा जान ने उस पर पांव रखा। ऊपर पहुँचे। एक ने कुर्सी पर चढ़ कर कीले बढ़ाईं। एक ले ली गई। दूसरे ने हथौड़ा ऊपर पहुँचाया। संभाला ही था कि कील हाथ से छूट कर गिर पड़ी। "देखना कहाँ गई ?" खिसियानी आवाज में बोले, "ऐ लो, अब कमबख्त कील छूट कर गिर पड़ी।"

अब जनाब सबके सब घुटनों के बल टटोल २ कर कील तलाश कर रहे हैं और चचा मियाँ सीढ़ी पर खड़े लगातार बुड़बुड़ा रहे हैं, "मिली ? अरे कमबख्तो, ढूंढी ? अब तक तो मैं सौ बार तलाश कर लेता। अब मैं रात भर सीढ़ी पर खड़ा-खड़ा सूखा करूँगा ? नहीं

मिलती, तो दूसरी ही दे दो अंधो !"

यह सुन कर सब की जान में जान आती है, तो पहली कील ही मिल जाती है। अब कील चचा जान के हाथ में पहुँचाते हैं, तो मालूम होता है, इस बीच में हथौड़ा ग़ाइब हो चुका है।

"यह हथौड़ा कहाँ गया ? कहाँ रखा था मैंने ? ला-हौल वला कुव्वतः। उल्लू की भाँति आँखें फाड़े मेरा मुँह क्या तक रहे हो ? सात आदमी और किसी को मालूम नहीं, हथौड़ा कहाँ रख दिया।"

बड़ी मुसीबतों से हथौड़े का पता चला और कील गाड़ने की नौबत आई। "अब आप यह भूल बैठे हैं कि मापने के बाद कील गाड़ने को दीवार पर निशान किस जगह किया था ?

सब बारी बारी से कुर्सी पर चढ़ कर प्रयत्न कर रहे हैं कि शायद निशान नज़र आ जाय। हर एक को अलग अलग जगह पर निशान दिखाई देता है। चचा सबको बारी-बारी उल्लू गधा कह कह कर कुर्सी से उतर जाने का आदेश दे रहे हैं। अन्त में फिर फुट्टा लिया और कोने से चित्र टाँगने की जगह को पुन. मापना आरम्भ किया। सामने का चित्र कोने से पैंतीस इञ्च के फासले पर लगा हुआ था। बारह और बारह, ऊपर के इञ्च और ?

बच्चों को मौखिक हिसाब का प्रश्न मिला ऊँची आवाज में हल करना आरम्भ किया और उत्तर निकाला, तो किसी का कुछ था और किसी का कुछ। एक ने दूसरे को ग़लत बताया। इसी तू तू मैं मैं में सब भूल बैठे कि वास्तविक प्रश्न क्या था। नये सिरे से माप लेने की आवश्यकता पड़ गई।

अब के चचा फुट्टे से नहीं मापते, सुतली से मापने का इरादा रखते हैं। सीढ़ी पर ४५ दर्जे का कोण बना कर सुतली का सिरा कोने तक पहुँचाने के प्रयत्न में हैं कि सुतली हाथ से छूट जाती है। आप लपक कर उसे पकड़ना चाहते हैं, कि इसी प्रयत्न में जमीन पर आ रहे हैं। कोने में सितार रखा था। उसके समस्त तार चचा जान के बोझ से एकदम

झनझना कर टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

अब चचा के मुँह से जो भंझे हुए शब्द निकलते हैं, सुनने के योग्य होते हैं। परन्तु चची रोक देती हैं और कहती हैं, "अपनी आयु का नहीं, तो इन बच्चों का ख़याल करो।

बहुत कठिनाई के बाद चचा जान फिर से कील गाड़ने की जगह निश्चित करते हैं। बाएँ हाथ से उस जगह कील रखते हैं और दाएँ हाथ से हथौड़ा संभालते हैं। पहली ही चोट जो पड़ती है, तो सीधे हाथ के अंगूठे पर। आप "सी" करके हथौड़ा छोड़ देते हैं। वह नीचे आकर गिरता है किसी के पाँव पर। "हाय, हाय, ओहो और मार डाला," आरम्भ हो जाता है।

चची जल भुन कर कहती हैं, "यूँ कील गाड़ना हुआ करे, तो मुझे आठ दिन पहले सूचना दे दिया कीजिये। मैं बच्चों को लेकर मायके चली जाया करूँ और नहीं तो।"

चचा लज्जित हो कर उत्तर देते हैं, "यह नारी जाति भी बात का बतंगड़ बना लेती है। यानी हुआ क्या, जिस पर ये ताने दिये जा रहे हैं। भला साहिब कान हुए, भविष्य में किसी काम में हस्तक्षेप न किया करेंगे।"

अब नये सिरे से प्रयत्न आरम्भ हुआ। कील पर दूसरी चोट जो पड़ी, तो उस जगह पलस्तर नर्म था, पूरी की पूरी कील और आधा हथौड़ा दीवार में और चचा अकस्मात् कील गड़ जाने से इस जोर से दीवार से टकराये कि नाक गैरत वाली होती, तो पिचक कर ही रह जाती।

इसके पश्चात् नये सिरे से फुट्टा और रस्सी तलाश की गई और कील गाड़ने की नई जगह निश्चित हुई और कोई आधी रात का समय होगा कि ख़ुदा ख़ुदा कह कर के चित्र टंगा। वह भी कैसा? टेढ़ा, भैंगा और इतना झुका हुआ, जैसे अब सिर पर आया कि अब सिर पर आया। चारों ओर गज गज भर दीवार की यह हालत, मानो चाँदमारी होती रही है। चचा के सिवा बाकी सब थकन से चूर चूर नींद में झूम

रहे हैं। अब आप आख़िरी सीढ़ी पर से धम से जो उतरते हैं, तो कहारी ग़रीब के पाँव पर पाँव। ग़रीब दुर्बल डील की थी। तड़प ही तो उठी। चचा उसकी चीख़ सुन कर जरा घबराये तो सही, परन्तु पल भर में डाढ़ी पर हाथ फेर कर बोले, "इतनी सी बात थी। लग भी गया। लोग इस काम के लिये मिस्तरी बुलवाया करते हैं।"

—सैयद इम्तियाज़ अली ताज

काठ का उल्लू

अब जब कि सेठ कचूमर मल की सफलता की ख़बर अख़बारों में छप चुकी है, यह उचित जान पड़ता है कि आप को बताया जाय कि वे हमारे क्षेत्र से पार्लमेन्ट्री चुनावों में सफल किस प्रकार हुए।

सेठ कचूमर मल, आयु उन्तालीस वर्ष (परन्तु मालूम उन्चास के होते हैं) एक आँख अस्ली, एक नक़्ली, चेहरा लम्बूतरा, रंग-ढंग गैर-शरीफ़ाना, लिबास प्राय: मैला कुचैला, जिस से लहसुन और हींग की मिली जुली गंध आती है। शिक्षा शून्य, व्यवसाय कोयला, चूना और ईंट का क्रय व विक्रय। सेठ साहिब हमारे क्षेत्र से स्वतन्त्र उम्मीदवार के रूप में खड़े हुए थे। किसी पार्टी के टिकेट पर इस लिए खड़े न हो सके कि पार्टी-कार्यालयों के स्थान पर ये डाकखानों और रेलवे तथा सिनेमा के टिकट घरों के दरवाज़े खट खटाते रहे। इन का ख़याल था कि चुनाव के टिकट इन स्थानों से मिलते हैं।

पहली नवम्बर की रात के दो बजे जब सारी दुनिया मज़े की नींद सो रही थी, सेठ साहिब को इल्हाम (आकाश वाणी) हुआ कि उन्हें पार्लमिंट के लिये खड़ा होना चाहिये। यह इल्हाम कुछ इस ज़ोर से हुआ कि आप अपने बिछौने पर सिर के बल खड़े हो गये और उस समय तक खड़े रहे, जब तक कि थक कर फिर बिछौने पर न गिर पड़े। दूसरे दिन उन्होंने मनोनयन-पत्र (काग़ज़ाते नामज़दगी) दाखिल करवाये। यह उसी दिन ग्यारह बजे की बात है कि आप की भेंट मुझ से सड़क पर हुई। कुछ घबराये हुए दिखाई देते थे। मैंने पूछा—

"सेठ साहिब ! क्या बात है ?"

झल्ला कर कहने लगे, "अजीब मुसीबत है यह भी।"

"क्या अजीब मुसीबत है ?"

"यह एलेक्शन के लिये चिह्न का निर्वाचन।"

"आप को एलेक्शन से क्या। आप मज़े से कोयले बेचिये। चिह्न का निर्वाचन करने वाले करते रहेंगे।"

"कोयला तो प्रतिदिन बेचता हूं, परन्तु चुनाव तो रोज-रोज नहीं आते।"

"भगवान न करें, कहीं आप एलेक्शन (चुनाव) के लिए तो खड़े नहीं हो रहे ?"

"हो नहीं रहा, हो गया हूं। अभी-अभी मनोनयन-पत्र दाखिल कर के आया हूं।"

"पर आप और एलेक्शन ?"

"हाँ हाँ, क्यों नहीं। जब चमड़ा बेचने वाले, जूता चुराने वाले, बूट-पालिश करने वाले एलेक्शन के लिये खड़े हो रहे हैं, तो कोयला बेचने वाले सेठ कचूमर मल ने क्या पाप किया है कि वह—"

"बात तो आप ठीक कहते हैं। अच्छा—तो बधाई स्वीकार कीजिये।"

"बधाई तो बाद में देखी जायेगी। पहले यह बताइये कि निशान कौन-सा चुना जाय ?"

"कोई भी चुन लीजिये, दर्जनों चिह्न हैं।"

"जैसे।"

"डुग-डुगी के सम्बन्ध में क्या खयाल है।"

"चिह्न तो अच्छा है, परन्तु कमबख्त मदारीलाल ने चुन लिया है।"

"रीछ ?"

"यह भी चुना जा चुका है।"

"सूर ?"

"इस सम्बन्ध में तो दो उम्मीदवारों में बहुत झगड़ा हो चला था।

आखि़र टास के द्वारा फैसला हुआ।"

"बारह सिंगा ?"

"यह कोई अच्छा निशान नहीं।"

"लगड़ बगड़ ?"

"बहुत खूंखार चिह्न है।"

मैंने सेठ साहिब को बीसियों चिह्न बताए, परन्तु उन्हें कोई पसन्द न आया। अन्त में मैंने उनसे यह कह कर छुट्टी चाही कि सायं तक सोच कर बताऊँगा।

सारा दिन इसी उधेड़ बुन में रहा कि सेठ साहिब के लिये कौन सा चिह्न उपयुक्त रहेगा। सेठ महोदय से मेरा पुराना मेल-मिलाप था और मैं नहीं चाहता था कि उन्हें निराश करूँ। काफी सोच विचार के पश्चात् मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि बावले कुत्ते से लेकर दुम कटी गिलहरी तक, चमगादड़ से लेकर खटमल तक कोई भी उनके लिये उपयुक्त नहीं। मैंने अपनी पराजय स्वीकार करते हुए उन्हें साफ-साफ कह दिया कि मैं कोई चिह्न ढूंढ नहीं सका। वे बहुत दुःखित हुए। उदास से लहजे में कहने लगे—

"अजीब बात है, आप जैसा पढ़ा लिखा व्यक्ति भी कोई चिह्न निश्चित नहीं कर सका।"

"बात तो सचमुच अजीब है, परन्तु किया भी क्या जाय। कोई भी चिह्न आप पर ठीक नहीं बैठता।"

"यह कैसे हो सकता है ?" उन्हों ने ऐसी आवाज में कहा, जिस पर चीख का संदेह होता था। और साथ ही अपनी असली और नकली आँख से मेरी ओर घूरने का प्रयत्न किया। अकस्मात् मुझे अनुभव हुआ कि मानो मैं अपने जीवन में पहली बार एक जीते जागते उल्लू को अपने सामने बैठा हुआ देख रहा हूँ। मैंने हर्ष से चिल्ला कर कहा—

"मिल गया, सेठ साहिब मिल गया।"

"क्या है, मुझे भी बताइये।"

"भगवान की कृपा से सर्वथा उपयुक्त चिह्न है।"

"बताइये भी ना।"

"काठ का उल्लू।"

"काठ का उल्लू?"

"हां हां काठ का उल्लू। आहा, भगवान की कसम अत्यन्त उचित चिह्न है।"

"आप मज़ाक तो नहीं कर रहे।"

"बिल्कुल नहीं, देखिये ना कितना अछूता चिन्ह है।"

"अछूता, वह कैसे?"

"अछूता तो है ही परन्तु अछूता होने के साथ-साथ दिलचस्प भी है। कोई वोटर इस चिह्न को आसानी से भूल नहीं सकेगा।"

"परन्तु कुछ विचित्र सा है।"

"ज़रा भर विचित्र नहीं। आप शायद इसलिये कह रहे हैं कि ज़रा हास्यमय है। परन्तु सेठ साहिब! इस में कोई खराबी या बुराई नहीं। दूसरे यह केवल काठ का उल्लू है, अस्ली अर्थात् हड्डी मांस का उल्लू नहीं और आप जानते हैं कि दोनों में बहुत अन्तर होता है।"

सेठ साहिब को संतुष्टि न हुई। किन्तु एक घंटे की बहस के बाद मैंने उन्हें यह चिह्न अपनाने पर संतुष्ट कर लिया।

"अच्छा, अब यह बताइये कि चुनाव में सफल होने के लिये क्या कुछ करना पड़ेगा?"

सेठ साहिब ने अत्यन्त गंभीरता से प्रश्न किया।

"बहुत कुछ।"

"फिर भी।"

"सब से पहले तो एक होशियार सा प्रापेगण्डा सेक्रेट्री तलाश कीजिये।"

"इस के बाद?"

"इस के बाद वोटरों का आश्वासन प्राप्त कीजिये।"

"वह कैसे ?"

"यह ज़रा टेढ़ी खीर है।"

"फिर भी।"

"बस किसी न किसी तरह उन्हें विश्वास दिला दीजिये कि आप सर्वश्रेष्ठ उम्मीदवार हैं।"

"विश्वास दिलाया जा सकता है।"

"तो फिर परमात्मा का नाम ले कर चुनाव (एलेक्शन) के मैदान में कूद पड़िये।"

सेठ साहिब ने 'क़लमदान' के सम्पादक मुंशी क़लमदीन 'क़लम' को अपना सेक्रेट्री नियुक्त किया। इस से उन्हें दो लाभ हुए। एक तो अख़बार 'क़लमदान' के कालमों में उनका यथोचित प्रापेगण्डा होने लगा, दूसरे एक उच्च साहित्यकार की सेवायें उन के लिए सुरक्षित हो गयीं। मुंशी क़लमदीन की योग्यता मेधाशक्ति का अनुमान उन दो पोस्टरों से लगाया जा सकता है, जो उन्होंने सेठ साहिब के लिये लिखे। पहले विज्ञापन का शीर्षक था—"इस लिये कि—

"काठ के उल्लू को वोट दीजिये।

"इस लिये कि—

"काठ का उल्लू काठ का उल्लू है।

इस लिये कि—

"काठ का उल्लू राजनीति को सर्वथा नहीं समझता।

"इस लिये कि—

"यदि आप उसे वोट देंगे, तो देश वहीं रहेगा, जहाँ अब है अर्थात् अवनति की ओर नहीं जायगा।

"इस लिये कि—

"काठ का उल्लू सर्वश्रेष्ठ उम्मीदवार है। क्योंकि इस से बड़ा काठ का उल्लू कोई नहीं।"

दूसरे विज्ञान का लेख यह था—

मैं वचन देता हूँ—"कि पार्लमिंट का सदस्य बनते ही प्रत्येक बालिग़ और नाबालिग़ का राशन तिगुना कर दूंगा ।

"पाँच वर्ष के लिये किसी व्यक्ति पर इनकम-टैक्स नहीं लगाने दूँगा । "आटे का भाव पन्द्रह रुपये मन से पन्द्रह आने मन कर दूँगा ।

"शुद्ध घी आठ आने सेर मिलेगा ।

"घरों में जितने चूहे हैं, उन सब को चुन-चुन कर मरवा दूँगा ।

"अपने देश में एक भी अवारा कुत्ता नहीं रहने दूँगा ।

"प्रत्येक विद्यार्थी की फ़ीस मुआफ़ करा दूँगा ।

"प्रत्येक फूहड़ पत्नी को पति की मार पीट से बचाने का प्रबन्ध करूँगा ।

"किसी भी गंदे नाले को गंदा नाला नहीं रहने दूँगा ।"

इन विज्ञापनों का दीवारों पर लगना था कि सारे नगर में तहलुका मच गया । तहलुका मचने का कारण यह भी था कि विज्ञापन पर दाईं ओर सेठ साहिब का चित्र था और बाईं ओर काठ के उल्लू का । परन्तु बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति भी यह तमीज नहीं कर सकता था कि सेठ साहिब और काठ के उल्लू में क्या अन्तर है । ये चित्र विख्यात आर्टिस्ट मुल्लू सिंह ने 'जो कुल्लू स्कूल आफ़ आर्ट' से सम्बन्ध रखते हैं, बनाए थे । इन दोनों विज्ञापनों का जनता पर बहुत प्रभाव हुआ । प्रायः और अधिकांश वोटरों ने स्वीकार किया कि सेठ साहिब ने राजनीति से अपनी अनभिज्ञता और अपरिचिति को स्वीकार करके ऊँचे दर्जे के नैतिक साहस का प्रमाण दिया है । "मैं, बचन देता हूँ" का जब मुक़ाबला दूसरे उम्मीदवारों की प्रतिज्ञाओं से किया गया, तो उनकी सब प्रतिज्ञाएँ तुच्छ दिखाई देने लगी । परन्तु सेठ साहिब ने केवल विज्ञापनों पर ही संतोष नहीं किया । जनता का अश्वासन प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपनी फ़र्म "कचूमर एण्ड सन्स" की सिलवर जुबली मनाने की घोषणा कर दी, जब कि फ़र्म को स्थापित हुए मुश्किल से पाँच वर्ष हुए थे । एक अत्यन्त शानदार दावत की गई, जिस में समस्त संभ्रांत वोटरों को बुलाया गया । दावत के अन्त में सेठ साहिब ने यह घोषणा की—

"मैं इस सुअवसर पर घोषणा करता हूँ कि धर्मस्थान अर्थात् मन्दिर मसजिद, गुरुद्वारे की सफ़ेदी अपने खर्च और अपनी फ़र्म के शुद्ध चूने से कराऊंगा। प्रत्येक, धर्म स्थान में जितना कोयला जलाने के लिये चाहियेगा, वह बिना मूल्य जुटाऊंगा। प्रत्येक धर्मस्थान की चार-दीवरी की मरम्मत के लिये जितनी ईंटों की आवश्यकता होगी "कचूमर एण्ड सन्स" उनके लिए एक पाई लेना भी पाप समझेंगे।"

इस घोषणा से उन के धर्मात्मा-पन की धाक बैठ गई और जब सचमुच ही उन्होंने शहर के सब से बड़े मन्दिर में बीस सेर कोयला भिजवा दिया, तो दिसम्बर की भीषण सर्दी में ठिठुरने वाले पुजारी और भक्त उन के नाम की माला जपने लगे। पन्द्रह दिसम्बर से पचीस दिसम्बर तक प्रति दिन सेठ कचूमर मल का जुलूस निकाला गया। एक जीप में, जिस की अगली सीट पर एक बड़ा वजनी काठ का उल्लू रखा गया था, सेठ साहिब को बिठाया गया। हज़ारों दर्शक काठ के उल्लू को देखने के लिये इकट्ठे हुए। शहर के पाँच स्कूलों के छात्रों को मिठाई का लालच देकर समझाया गया कि जुलूस के साथ-साथ चलें और प्रत्येक पाँच मिनट के बाद मुंशी कलमदीन 'कलम' की लिखी हुई कविता मिल कर गायें—

काठ का उल्लू—प्यारा प्यारा
काठ का उल्लू—आँख का तारा
काठ का उल्लू—सबसे न्यारा
काठ का उल्लू—कभी न हारा

नगर के विभिन्न भागों में काठ के उल्लू के पक्ष में जलसे किये गये, जिन में मुंशी कलम-दीन "कलम" के लिखे हुए भाषण पढ़े गये। जनता को बताया गया कि काठ का उल्लू पार्लामेंट का सदस्य निर्वाचित होने के पश्चात उन के लिए क्या-क्या करेगा। लगभग प्रत्येक भाषण में यह बात दुहराई गई कि यद्यपि काठ का उल्लू राजनीति के 'क, ख' से भी अनभिज्ञ है, इसे कोयला, चूना, और ईंटें बेचने का प्रयाप्त

अनुभव है। यद्यपि जनता की समस्यायें समझने में असमर्थ है, परन्तु इस विषय में विवश और क्षम्य समझा जाय क्योंकि जन साधारण की समस्यायें इतनी पेचदर हैं कि किसी व्यक्ति की समझ में नहीं आ सकतीं। यद्यपि उसे यह मालूम नहीं कि आया दिल्ली भारत की राजधानी है या भारत दिल्ली की, उसे क्षमा कर दिया जायगा, क्यों कि उस ने भूगोल कभी नहीं पढ़ा।

"इन भाषणों का यह प्रभाव हुआ कि बहुत से लोग, जो सेठ कचूमर मल को केवल कोयले का व्यापारी समझा करते थे, उसे उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ भी समझने लगे और उन में से अधिक लोग कोयला भी उसी से खरीदने लगे।

सेठ कचूमर मल के मुकाबले में केवल दो उम्मीदवार थे। ऐलेक्शन से कुछ दिन पहले मुंशी क़लम-दीन "क़लम" ने एक को सेठ के हक़ में बिठा दिया। बैठने का कारण यह बताया जाता है कि मुंशी क़लम-दीन साहिब ने यह बात उसके मन में बिठा दी कि यदि तुम जीत गये, तो लोग कहेंगे काठ के उल्लू के मुकाबले में जीता है और यदि हार गये तो चिढ़ायेंगे कि काठ के उल्लू ने हरा दिया।"

दूसरा उम्मीदवार आखिरी दम तक डटा रहा। क्योंकि अत्यन्त सख्त-जान सिद्ध हुआ था। उस को सेठ साहिब के मुकाबिले में केवल पाँच प्रतिशत वोट मिले और बेचारे की ज़मानत भी जब्त हो गई। यह ठीक है कि वह शिक्षित था, राजनीति को समझता था, शायद जनता की सेवा भी कर सकता था, परन्तु उस कमबख्त ने ग़लती यह की कि अपना निशान (चिह्न) "हुमा"१ चुन लिया और आप जानते हैं कि अपने देश में "काठ के उल्लू" के मुकाबले में "हुमा" को कौन पूछता है।

—"कन्हैया लाल कपूर"

१. 'हुमा' एक विख्यात पक्षी का नाम है, जिस के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि जिसके सिर पर इस पक्षी की छाया हो जाय, वह बादशाह हो जाता है।

मिर्ज़ा बन्दूक़ची

इसी ऐतिहासिक शहर में, जिस के निवासी "कनकौआ" नाम से विख्यात हैं, हमारे मिर्ज़ा जी भी रहते थे। मिर्ज़ा बड़े रंगीले स्वभाव के व्यक्ति थे। शहर में प्राय: अमीर-ज़ादों के पास नई तर्ज़ की बन्दूकें थीं। कभी-कभी मिर्ज़ा जी को भी किसी के साथ शिकार जाने का अवसर मिल जाता। परन्तु जब किसी के साथ शिकार खेलने जाने लगते, तो एक मोटा सा रूईदार कनटोप पहन लिया करते और जब बन्दूक चलने लगती, तो आप दूर फ़ासले पर जा खड़े होते। और कानों में यूँ उँगलियाँ दे लेते जैसे कोई अज़ान १ देने लगा हो और वहीं से खड़े-खड़े ऊँची आवाज़ से पूछा—

"क्यों भाई चल गई ना? हटालें हाथ कानों से! मार लिया न आख़िर।"

और जो कोई आप की ओर पलट कर देखता, तो आप ज़ोर से चिल्लाने लगते—

"अबे ख़बरदार, कहीं हमारी ओर न दाग़ दीजो, हत्या के प्रयत्न के अपराध में धर लिये जाओगे।"

एक दिन आप के मिलने वालों में से जो दो चार आदमी शिकार को चले, तो आप भी साथ चलने को तैयार हो गये। उनमें से एक बोला—

"ऐ मिर्ज़ा जी! आप क्यों कष्ट उठाते हैं? आप का हिस्सा घर ही

---

१. नमाज़ के समय की सूचना देने के लिए मसजिद का मुल्ला जो बाँग देता है, उसे "अज़ान" कहा जाता है

पहुँच जायगा।"

मिर्जा जी इस पर बिगड़ गये और कहने लगे—

"क्यों जी ! क्या हम मनहूस हैं, जो हमारा साथ चलना आप को भाता नहीं। क़सम ख़ुदा की पीर जी की बुआ से घर के लोग सवेरे हमारा मुंह देखना मुबारक समझते हैं। हमें खाने का शौक़ नहीं देखने का शौक़ है।"

"अजी मिर्जा जी !" एक और ने कहा, "आप क्यों टेढ़े होने लगे। काफ़िर हो जो आप को सब्ज़-क़दम या मनहूस समझे। बात यह है कि आप शोर गुल इतना करते हैं कि जानवर डर कर भाग जाते हैं।'

यह सुन कर मिर्जा जी बड़ी गंभीरता से बोले—"समझा, बात करने से जानवर भाग जाते हैं। यहाँ यह बात तो तुमने बड़ी पक्की कही।"

"परन्तु मिर्जा जी," मैंने पूछा, "यह आप कानों में उंगलियाँ क्यों ठूंस लेते हैं और इतने मोटे कनटोप में क्या रहस्य है ?"

"लो जी इन्हें इतनी बात भी मालूम नहीं," मिर्ज़ा जी मुस्करा कर बोले—"हमें तो छुटपने में ही धाय ने अच्छी तरह समझा दिया था कि कम्पनी बहादुर की तोपों की आवाज़ से कान फट जाया करते हैं और तुम क्या जानो गोल-अन्दाज़ १ तो वही लोग होते हैं जो जन्म ही से बहरे हों या कम्पनी बहादुर के डाक्टरों ने कलात्मक रूप से उन के कानों में सीसा भर दिया हो, अन्यथा जिगर फट जाने का भय होता है।"

"अजी वाह हज़रत !" एक ने हँस कर कहा, "क्या कहने आप के। यह बात तो आप ने बहुत पते की कही। हम तो आज तक भूले ही रहे ?" फिर दूसरों की ओर देख कर—

"देखो भाई, बन्दूक चलाने लगो, तो पहले सब से पुकार कर कह दीजो, बन्दूक चलती है, कान बन्द कर लो। यदि आप बहरे हो गये, तो हम ज़िम्मादार नहीं। जिगर फट गया, तो हम से खून के बदले खून मत

---

१. तोप चलाने वाला, तोपची।

मांगियो।

"शाबाश!" मिर्ज़ा जी मुसकुरा कर बोले, बुद्धिमत्ता इसी का नाम है कि इन्सान सतर्क रहे। लो एक बात और भी सुन लो।"

"कहिये!" और फिर बन्दूक वाले मित्र से, "मेरे यार,तुम भी सुनो। ऐसे रहस्य तो हकीम लुक़मान को भी याद न होंगे, हाँ मिर्ज़ा जी कहिये।"

मिर्ज़ा जी बोले, "बन्दूक की आवाज़ से दिमाग़ पर चोट पड़ती है। उससे दिमाग़ ख़राब हो जाने का डर है। ये जो हम प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ बने फिरते हैं, यह सब दिमाग़ ही का तो चमत्कार है। सिर को अवश्य सुरक्षित रखना चाहिये।"

"सत्य कहा आपने। हम भी घर से पाव आध सेर रूई आज से साथ ले चलेंगे।"

"यह क्यों?" एक ने पूछा।

"मेरे यार सिर के गिर्द लपेट लेंगे, क्यों मिर्ज़ा जी ठीक है ना?

"ठीक तो है, परन्तु युक्ति पूरी होनी चाहिये," मिर्ज़ा जी सिर हिला कर बोले।

"तो फिर कहिये। काम की बात बताने में कँजूसी मत कीजिये।"

"लो बताए देते हैं," मिर्ज़ा जी ने हँस कर कहा, अनहोनी से बचने के लिये पीर जी का तावीज़ गण्डा, (टोना, जन्त्र मन्त्र) भी पास होना चाहिये।"

"सच तो कहते हैं। पीर जी का तावीज़ पास होगा, तो शिकार को दूर ही से दिखला देंगे। भागेगा तो नहीं।"

इस पर एक ठहाका पड़ा। मिर्ज़ा जी बिगड़ कर बोले—

"अच्छा हमें बनाते हो। जाओ नहीं साथ चलते हम।" फिर ज़रा नौकर को भी मुसकुराते देख कर—"अबे, तू भी हँसता है कमबख़्त! समझ लेंगे तुझ से। ज़रा चल लें। ये लोग समझते हैं, हम लालच से साथ चलते हैं।"

"कमबख़्त हो जो ऐसा ख़्याल भी करता हो," एक ने कहा।

"बस रहने दो जी ! एक शहर के रहने वाले और इतने तोता-चश्म ! चलना हमने टाँगों से, देखना हम ने अपनी आँखों से जाने हम तुम्हें दूभर क्यों हो रहे हैं ?"

तो अब इस पर वे साहिब जिन के पास बन्दूक थी कहने लगे—

"जी नहीं मिर्ज़ा जी ! सच पूछिये, तो हम तो यह चाहते हैं कि आप भी बन्दूक चलानी सीख लें।"

"अजी वाह !" मिर्ज़ा बोले, "बन्दूक चलाना सीख लूँ। जैसे हमें चलानी नहीं आती। तुम तो तब जानो जब सारे शहर में डौण्डी फिरे। यह कहिये कि बन्दूक ख़रीद लो। अब के फ़स्ल पकने पर जनाब कम्पनी बहादुर के कारखाने की बन्दूक अवश्य ले लेंगे। वे भी तो कहती थीं, 'घर में हथियार का होना आवश्यक है, क्योंकि देश को स्वराज्य मिलने वाला है।' आप जानिये ! इधर स्वराज्य मिला उधर जान क्या भले लोगों की तो आन भी खतरे में पड़ जायगी।"

मिलने जुलने वाले मिर्ज़ा साहिब की हँसी उड़ाया करते थे, परन्तु मिर्ज़ा थे कि अपनी धुन के पक्के। अड़ियल घोड़े की भाँति, जिस बात पर अड़ जाते, क्या मजाल, जो उससे पलट जायें। यद्यपि ज़माना उन्नति कर रहा था, परन्तु उनके यहाँ वही पुरानी रीतियाँ चली आती थीं। पक्के पीर-पूजक थे। बात-बात पर पीर जी की क़सम खाते थे। यार लोग उनका समादर ख़ानदानी होने के कारण करते, परन्तु बनाते भी खूब।

मिर्ज़ा जी जब कभी किसी के साथ शिकार खेलने जाते, तो वापस आ कर तरह-तरह से बेगम साहिबा को एक बन्दूक ख़रीद लेने की आज्ञा दे देने पर तैयार किया करते।

अब के फ़स्ल बहुत अच्छी हुई थी। पीर जी की नियाज बड़े चाव

और समारोह से दी जा चुकी थी।

और बेगम साहिबा से एक नाली बन्दूक खरीदने की स्वीकृति भी प्राप्त हो चुकी थी। अब आप इस चिन्ता में थे कि बन्दूक कहाँ से खरीदें। टोपीदार बन्दूकें तो सस्ते दामों पर मिल सकती थीं। परन्तु आप इस प्रकार की घटिया बन्दूक ख़रीदना अपनी शान के विरुद्ध समझते थे और कारतूसी बन्दूक चाहते थे। अन्त में एक दिन अपने मित्र के साथ अंग्रेज़ी दुकान पर पहुँचे। आज वस्त्र विशेष रंग ढंग से पहने थे। सुफ़ेद चिकन का कुर्ता था और पीले से रंग का अचकन और इसके ऊपर सुनहरी तारों से कढ़ी हुई वास्कट। परन्तु जान पड़ता था कि दादा जान के समय से ख़ानदान में अमानत चली आती है। सिर पर कामदार मख़मली टोपी थी और पाँव में नफ़ीस जूती। कंधे पर लाल फूलदार रूमाल और बासन्ती इज़ार-बन्द रीति अनुसार घुटनों तक लटक रहा था। दुकान में दाख़िल हुए, तो सामने एक फिरंगी को, जो संभवतः कोई 'सेल्ज़मैन' था, देखते ही पाँव से जूता उतार लिया। साथी बोला—

"जूता क्यों उतारते हो, यूँही अन्दर चले जाइये ना।"

"मेरे यार चुप भी रहो तुम।" मिर्ज़ा जी तेवारी चढ़ा कर बोले, "तुम क्या जानो सभ्यता किस जानवर का नाम है। ये साहिब भी तो कम्पनी बहादुर के ख़ानदान के लोग हैं। इनका आदर न करें तो हमें हिन्दुस्तानी कौन कहे।"

साथी यह सुन कर चुपका हो रहा और मिर्ज़ा जी ज़रा झिझकते हुए और कमर को झुकाते हुए दुकान में दाख़िल हुए और सिर झुका कर सीने पर हाथ रख कर खड़े हो गये। साहिब ने नज़र उठा कर देखा, तो आप ने एक नहीं अपितु तीन फ़र्शी सलाम कर दिये। चूँकि रूप रंग से शरीफ़ आदमी जान पड़ते थे, एक बाबू ने पास आ कर पूछा—

"क्या चाहिये आप को?"

"क्या ख़ूब," मिर्ज़ा जी अकड़ कर बोले," इतना भी नहीं समझते कि हम ख़रीदार हैं। (जेब से तिल्ले का कढ़ा हुआ एक मैला कुचैला

बटुआ निकाल कर) घर से ख़ाली हाथ थोड़े आये हैं।"

"तो कहिये क्या दिखाऊँ ?"

मिर्ज़ा जी बोले—

"तुम से नहीं कहते। बात करने का सलीक़ा हो तो कहें भी। हम साहिब बहादुर से स्वयं बात चीत कर लेंगे" और वहीं से खड़े-खड़े सलाम करके बोले—

"हुज़ूर। हमें बन्दूक चाहिये। आली जनाब कम्पनी बहादुर के कारखाने की ख़ास बनी हुई खरीदेंगे। हुक्म हो जाए।"

फिरंगी बाबू उन की ओर देख कर मुस्कुराया, तो मिर्ज़ा साहिब ने झुक कर एक और सलाम दाग़ दिया।

बाबू ने पूछा—

"कहिये कौन सी बन्दूकें खरीदेंगे ?"

"कह जो दिया कि आली जनाब कम्पनी बहादुर के कारखाने की।"

"कितने दाम की हो ?"

"जितनी भी हो। कोई सौ डेढ़ सौ रुपये तक हो, एक कारतूस चलाने वाली।"

बाबू दो चार बन्दूकें उठा लाया और मेज़ पर रख कर बोला—

"पसन्द कर लीजिये।"

अब पसन्द कौन करे। मिर्ज़ा जी ने तो आज तक बन्दूक को हाथ तक नहीं लगाया था। कभी इधर खड़े होकर देखते, कभी उस ओर खड़े होकर। अन्त में कुछ सोच कर बोले—

"कोई अच्छी सी हो, तो लें भी।" फिर अपने साथी से, "क्यों जी कुछ तुम भी तो बोलो बुत बने क्यों खड़े हो।"

बाबू ने हैरान हो कर पूछा—

"तो क्या इनमें से कोई भी पसन्द नहीं ?"

"क्यों नहीं," मिर्ज़ा जी ने कान खुजलाते हुए उत्तर दिया, "सभी अच्छी तो हैं, परन्तु ज़रा अच्छी चलने वाली हो।"

"सभी अच्छी चलने वाली हैं," साथी बोला, "ज़रा पक्की हो और क्या।"

"भई तुम बात तो समझे नहीं, बिना सोचे समझे बोल दिये।" मिर्ज़ा जी गर्म होकर बोले—"हमारा मतलब तो यह है, ऐसी हो जो शिकार मार सके।"

"सभी ऐसी हैं," बाबू ने एक बन्दूक उठाने को जो हाथ बढ़ाया, तो हमारे मिर्ज़ा जी झट दो-चार पग पीछे हट गये और घबरा कर बोले—

"ऐ बाबू जी, रहने दीजिये यूँ ही। ऐसे ही देख लेंगे हम।"

बाबू भाँप गया कि बस कोरे ही हैं। अन्त में कुछ सोच-विचार के बाद मिर्ज़ा जी ने एक-नाली बन्दूक और कुछ कारतूस खरीद ही लिये और बड़े अदब से झुक कर सलाम करते हुए पिछले पांव दुकान से बाहर आ गये और कागज़ से लिपटी हुई बन्दूक कन्धे पर रख कर घर को सिधारे और बिल्कुल टेढ़े-मेढ़े चलने लगे। रास्ते में एक मित्र मिल गये। उन्होंने ठहरा लिया।

"क्यों जी! यह क्या उठाये फिरते हैं आप कन्धे पर?"

मिर्ज़ा जी मुसकुरा कर बोले—

"पहले ही कहा था कि आप न जानेंगे। लो बतलाए देते हैं, परन्तु ज़रा पीछे हट कर रहो। यह कम्पनी बहादुर के कारखाने की बन्दूक है हमारे कंधे पर। अभी-अभी लेकर आए हैं। पूरे एक सौ चेहरा शाही दिये हैं। समझ गये ना अब?"

"तो कागज़ से निकाल कर कंधे पर उठाइये। हवा लगने से खराब थोड़ी हो जायगी," मित्र ने कहा।

मिर्ज़ा जी बोले—"मुश्किल तो यह है कि जिस बात की आपको खबर नहीं होती, उसमें भी दखल देने से नहीं चूकते। अजी तुम क्या जानो इसकी शक्ति का ठिकाना। समझ लो बड़ा ज़ालिम हथियार है। इसी के बल-बूते पर तो अंग्रेज बहादुर ने आधी दुनिया पर अधिकार जमा रखा है और अब देख लीजियेगा आप, कि शहर के सब लुच्चे-

लफ़ंगे झुक-झुक कर सलाम करेंगे। जिसकी लाठी उसकी भैंस। अब देख लेंगे कैसे कोई अकड़ता है मुहल्ले में हम से !!"

जब घर पहुंचे, तो सामने दालान में बच्चे खेल रहे थे। उन को ललकारा—

"रास्ते से अलग हो जाओ। देखते नहीं कंधे पर बन्दूक है हमारे।"

मिर्ज़ा जी की आवाज़ सुन कर बेगम साहिबा भी रसोई में से दुपट्टा संभालती हुई निकल आईं और पास आकर बोलीं—

"ले आये न आख़िर। शुक्र है आप का शौक़ तो पूरा हुआ। लाइये अन्दर रख दूं इसे।"

मिर्ज़ा जी दो कदम पीछे हट कर बोले—

"क्या कमबख़्ती है। तुम तो बच्चों से भी अनजान हो। देखो हाथ मत लगाइयो। ज़रा हट कर रहो जी। बच्चों का खेल थोड़ा ही है। बन्दूक है यह तो ख़ालिस लोहे की बनी हुई है।"

वे मुस्करा कर बोलीं—

"अरे रहने भी दो। रखो इसे एक ओर। अब तो पूरे तीस-मार ख़ान बन गये।"

साथ ही बेगम साहिबा की दृष्टि रूमाल पर पड़ी। हाथ बढ़ा कर बोलीं—

"देखें तो यह क्या बाँध रखा है ?"

मिर्ज़ा जी मेंडक की तरह उछल कर पीछे हटे और आँखें फाड़-फाड़ कर बीवी की ओर देख कर बोले—

"तुम ने तो ग़ज़ब ही कर दिया था। कुशल-मंगल रहा जो हाथ नहीं लगाया। क्या पगली हो। ये कारतूस बँधे हैं।"

"अरे, कारतूस बन्धे हैं, तो फिर क्या हुआ ?"

"हुआ क्या ? यह पीर जी की कृपा थी, जो ख़ैर गुज़री। यदि चल

जाते तो ?"

"चल कैसे जाते । क्या आप ही से ?"

"तो और क्या । यह कम्पनी बहादुर के कारखाने की चीजें देखने में तो बहुत भली जान पड़ती हैं, परन्तु वास्तव में हैं बहुत ख़तरनाक। लो ज़रा अन्दर आओ । इनके रखने का उपाय करें ।"

यह कहते हुए मिर्ज़ा जी अपनी कोठरी में जा घुसे, परन्तु क्या मजाल जो बन्दूक कंधे से अलग की हो । पीछे-पीछे बेगम साहिबा भी आईं और उन के साथ बच्चे भी घुस आये ।

मिर्ज़ा जी बोले—"अरे भाग जाओ तुम ।" और फिर बेगम साहिबा से—"इन्हें निकाल कर ज़रा किवाड़ बन्द कर लो जी !"

"क्यों निकालूँ इनको ? घर में चीज आई है । इनको भी देखने दो ।" वे बोलीं ।

"पीर जी की कसम," मिर्ज़ा ने झल्ला कर कहा, "तुम्हारी बुद्धि तो घास चरने नहीं गई है । इतने बच्चों की माँ बन कर भी अक्ल नहीं आई । आग से खेलना जान से खेलना है । अब देखिये तुम, सारा मुहल्ला किस तरह दबक कर रहता है हम से । शहर में तो अभी से पुकार पड़ गई है ।"

"यह शेख़चिल्ली वाली बातें छोड़िये," बीवी ने कहा । "परन्तु यह क्या मुसीबत है, निगोड़ी बन्दूक कभी कंधे से अलग भी होगी या यूँ ही कलेजे से लगाय रखियेगा इसे ?"

मिर्ज़ा जी झल्ला कर बोले—"रक्खूँ कहाँ ? इसी चिन्ता में तो हूँ । सामने बच्चे खड़े हैं । हमारा तो जी काँप रहा है । मुफ्त में शैतान का चर्खा ले आये हम तो । तुम्हें कुछ अक्ल होती, तो बात भी थी । अब जान सहम में रहेगी, तो हमारी रहेगी तुम्हारी जूती को ।"

"चलिये," बीवी बोली, "बुद्धिमान आप ही सही । यहाँ कोने में लगा दीजिये इसे ।"

"लाहौल-वला-कुव्वतः ! क्या मेरी तुम्हारी तरह अक्ल मारी गई

है, जो यहाँ रख दूं ।"

"तो अच्छा छत में लटका दीजिये ।"

"तुम चुप भी रहो जी। कुछ हमें भी सोचने दो।" मिर्ज़ा ने झुंझला कर कहा, "छत में यदि लटकायेंगे, तो क्या चूहे ख़राब न कर देंगे।"

इतने में बाहर से एक कुत्ता आ गया एक बच्चा कहने लगा—

"अब्बा! वह देखिये कुत्ता घुस आया। इसे मारिये गोली। हम भी तमाशा देखेंगे।"

मिर्ज़ा जी हँस कर बोले—

"कुत्ता तो मार लेंगे, परन्तु यह पड़ोसी की दीवार का कौन जिम्मादार होगा?"

"या अल्लाह!" बेगम ने झल्ला कर कहा, "बन्दूक़ न हुई भंगियों की तोप ठहरी, जो पड़ोसी की दीवार भी गिरा देगी।"

"अजी तुम क्या जानो, इसकी ताक़त का ठिकाना। लो सुनो, हम इसे तहख़ाने में रखते हैं, परन्तु घर में कह दो कि कोई तहख़ाने का दरवाज़ा खटखटाय नहीं और हाँ लाल साटिन का एक ग़िलाफ़ भी तैयार कर दो हमें। उस में रखा करेंगे, जरा सुन्दर हो।"

ग़िलाफ़ तो तैयार हो ही जायगा, परन्तु दरवाज़ा खटखटाने से बन्दूक जाग उठेगी क्या?" बेगम ने हँस कर कहा।

"अजी तौबा!" मिर्ज़ा बोले, "कौन कहता है जाग उठेगी। धमाके से कारतूस न चल जायँगे? मूर्ख! यह आतिशबाज़ी के पटाखे नहीं, अपितु इनसे किले ढाए जाते हैं और केवल वही लोग इन्हें बना सकते हैं, जो कारखाना वालों को अपना खून मुआफ़ कर दें।"

अन्त में बड़ी सफलता पूर्वक मिर्ज़ा जी ने तहखाने में उतर कर एक खाट पर बन्दूक और कारतूस रख दिये और फिर दरवाज़े में कुफ्ल डाल कर चाबी इज़ारबन्द से बाँध ली।

बन्दूक आये घर में कई दिन हो चुके थे। लाल साटिन का ग़िलाफ़

भी बेगम साहिबा ने तैयार कर दिया था, परन्तु मिर्ज़ा साहिब शिकार जाने का नाम ही न लेते। अन्त में एक दिन बेगम साहिबा ने पूछा—

"यह बन्दूक क्या अब भी यूं ही पड़ी रहेगी!"

"तो और क्या रात को मुहल्ले में पहरा दिया करूंगा," मिर्ज़ा जी जरा गर्म होकर बोले।

"पहरा क्यों दो," बीवी ने कहा।

"तो और?"

"शिकार क्यों नहीं जाते?"

मिर्ज़ा साहिब मुसकुरा कर बोले—"क्या इसे भी बच्चों का खेल समझ रखा है? बहुत जान-जोखिम का काम है। समझ लो कि कीचड़ और कांटों में सीना और घुटने रगड़ते-रगड़ते हड्डियां ही निकल आती हैं।

"शिकार जाना और घुटने रगड़ना, क्या मतलब? कोई शिकार जीविल थोड़ा पकड़ना होता है!" बेगम ने पूछा।

क्या वाहियात हो तुम भी शिकार खेलना भी बुद्धि नीति में शामिल है। हजारों रीतियां और नियम उस्तादों ने बांध रखे हैं, यदि जरा गलती हो जाय, तो लेने के देने पड़ जाते हैं। ये बातें भी याद करने को बर्षों चाहियें। फिर बन्दूक पकड़ने, निशाना बांधने और चलाने के अभ्यास की आवश्यकता है और निशाना चूक कर बेकार हो जाने का डर तो प्रत्येक समय मौजूद है ही। एक गोली चलाने को हजार यत्न करने पड़ते हैं और फिर जंगल के पंख-पखेरू ऐसे होशियार होते हैं कि शिकारी को देख कर पहले तो दबक जाते हैं, परन्तु ज्यों ही सिर पर पहुंचे, फुर्र से उड़ गये। उन्हें वश करने की मुश्किलें अलग हैं। ये बातें जरा दिमाग में अंकित कर लो। बच्चों के काम आयेंगी। अन्त में यह बन्दूक उन्हीं को तो बपौती में मिलेगी।"

बेगम बोली—"बस हो ली कथा या अभी कुछ बाकी है?"

वह तो हम ने पहले ही जाना था कि पत्थर को सुनना और तुम्हे समझाना बराबर है," मिर्जा ने तग आ कर कहा ।

बेगम—'छोड़िये ये व्यर्थ बातें और यह मुहल्ला में जो रिसालदार रहते हैं, आप उनसे मिले । वे सब ढंग बतला देगे ।"

मिर्ज़ा—खूब पते की कही तुमने । सचमुच, इनसे सब रहस्य मालूम हो सकेगे । ऐसा न हो कि हम शिकार को निकले और देखने वाले अनाड़ी समझ कर हँसी उडाएँ । तुम्हारे सिर की कसम तुम्हारी इन्ही बातों से तो हमें प्रेम की सुगन्धि आती है ।"

मिर्जा जी एक दिन रिसालदार से मिलने गये । वे बडी तेज नजर रखते थे । मिर्जा जी के स्वभाव और स्थिति से अच्छी तरह परिचित थे । बड़े आदर से पेश आये । अन्दर से गिलौरी बन कर आई । वह खिलाई । बातों बातों में उन्होने पूछा—

"मिर्जा जी सुना है कि आप भी बन्दूक ले आये हैं । जनाब हमें भी तो दिखलाई होती ।"

मिर्जा—"रिसालदार साहिब क्या निवेदन करूँ । सच पूछो तो ख्वाह मख्वाह झगडा मोल ले लिया । हम ठहरे जमींदार लोग । ये धन्धे बखेडे क्या जाने । यह तो आप जैसे जगी बहादुरो के काम है । और सच तो यह है कि हमें ऐसे भीषण खूनी हथियारो से भय भी लगता है । अकारण जान का रोग खरीद लाये हैं ।"

रिसालदार—"अजी भय कैसा । हथियार रखना तो बहुत जरूरी है ।"

मिर्ज़ा—"ठीक तो है, परन्तु बाल बच्चों वाला घर ठहरा । सावधानी करनी ही पड़ती है ।"

रिसालदार—"कहिये, कभी शिकार गये ?"

मिर्ज़ा—आज कल जाने का इरादा कर ही रहा हूँ । ये दुनिया के धन्धे छोड़े, तो कुछ सूझे भी । हाँ याद आया, आप से कुछ परामर्श

करना था।"

रिसालदार—"कहिये।"

मिर्ज़ा—"रिसालदार साहिब ! गोली सिर में मारनी चाहिये कि जानवर की कमर में ?"

"क्या आप गोलियाँ खरीद लाये हैं ?" रिसालदार ने हैरान हो कर पूछा।

मिर्ज़ा जी ने जेब से एक कारतूस, जो बड़ी सतर्कता से रूई में लपेट रखा था, निकाला और रिसालदार को दिखा कर बोले—

"हम तो यह लाये हैं। देख लीजिये हुजूर कम्पनी बहादुर के कारखाने का तो है ?"

रिसालदार—"ठीक है। आप तो गोली की बात करते थे। यह तो छर्रा वाला है। इसमें सैंकड़ों छर्रे होते हैं।"

मिर्ज़ा जी सिर झुका कर बोले—

"ठीक फ़रमाया। फिर जानवर भी तो सैंकड़ों ही मर जाते होंगे ! खैर गरीब गुरबा भी गोश्त खा लिया करेंगे। हमने पहले ही कहा था कि रिसालदार साहिब इन बातों को खूब समझते हैं। अच्छा यह तो बताइये कि बन्दूक चलाते समय छाती से लगा कर चलाना अच्छा है या कन्धे से।"

रिसालदार—"कन्धे से लगा कर सीधी कीजिये और दे मारिये।"

मिर्ज़ा—"सुब्हान अल्लाह ! क्या युक्ति बताई। दोनों आँखें खुली हों, तो निशाना अच्छा बैठेगा या एक आँख बन्द कर लेने से।"

रिसालदार—"अजी हज़रत ! एक आँख बन्द करने से निशाना अच्छा रहेगा। चलाते समय साँस भी रोक लेना आवश्यक है। इस से एक तो हाथ नहीं हिलते, दूसरे दिल धड़कता नहीं।"

मिर्ज़ा—"कमाल कर दिया आप ने तो। भला ये भेद और लोगों को क्या खाक मालूम होंगे। निःसंदेह एक आँख बन्द करने और साँस रोकने का अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिये। हाँ आप के खयाल में

पौष्टिक औषधियों का प्रयोग करना कैसा रहेगा ?"

"आवश्य कीजिये," रिसालदार ने मुस्करा कर कहा ।

रिसालदार समझ गया कि मिर्ज़ा जी बिल्कुल कोरे हैं । जब आप चलने लगे तो उन्होंने हँस कर कहा—

'अजी मिर्ज़ा जी चिन्ता न कीजिये । बन्दूक चलाना कोई कठिन काम नहीं, आप ग़रीब खाना पर तशरीफ़ ले आया कीजिये । दो चार दिन ही में साफ कर देंगे । वह निशाना लगे कि देखने वाले वाह वाह कह उठें ।"

मिर्ज़ा जी यह सुनते ही झुक कर कमान बन गये और सलाम करने लगे । बोले—

"यह तो मुझे आपसे पहले ही आशा थी । यह सब खानदानी सम्बन्धों का चमत्कार है । कोई ग़ैर होता, तो ये भेद की बातें कब बतलाता । खुदा आप जैसे बुज़ुर्गों को सलामत रखे ।

अब मिर्ज़ा जी प्रति दिन रिसालदार के यहाँ जाते और बन्दूक चलाने का अभ्यास किया करते । कोई दस पन्द्रह दिन में बन्दूक में कारतूस डालने निशाना बान्धने और घोड़ा दबाने की रीति सीख ली । जब घर आते, तो अपनी कोठरी में बैठ कर साँस रोकने का अभ्यास करते । घर के लोग समझते कि पीर जी ने कोई मन्त्र बताया होगा वही साँस खींच कर पढ़ते हैं । पिछले पहर दर्पण लेकर बैठ जाते और एक आँख बन्द करने का अभ्यास करते और आख़िर—

"यह कम्बख्त तो बन्द होने से रही", कह कर घर वालों से रूठ कर खाट पर पड़े रहते ।

मौसम आरंभ होते ही शौकीन लोग शिकार जाने लगे, परन्तु चूँकि अब मिर्ज़ा साहिब के पास अपनी बन्दूक थी, इसलिये दूसरों के साथ जाना ज़रा शान के विरुद्ध था । एक दिन बेगम साहिबा से बोले— '

"तुम प्रतिदिन कहा करती हो कि शिकार क्यों नहीं जाते, परन्तु

कभी कुछ प्रबन्ध भी किया तुम ने ?"

बेगम—"प्रबन्ध, कैसा प्रबन्ध ? यही दो चार चपातियां चाहिये होंगी सो वे पक जायँगी।"

मिर्ज़ा—"तो मानो हम किसी की कब्र पर भेंट चढ़ाने जायँगे। लो और सुनो, दो चार चपातियों से शिकार हो जायगा। है न बुद्धि मारी गई। इस हव्वा की नलाइक़ बेटी की तुम क्या जानो ! शिकारी लोग कैसे शिकार जाते हैं। क्या-क्या साज़ो-सामान साथ होते हैं।"

बेगम—"ये मुँह ज़ोरियाँ रहने दीजिये, काम की बात कीजिये, जो आवश्यक चीज़ है, उसका प्रबन्ध हो जायगा।"

मिर्ज़ा—(ज़रा अकड़ कर) "ऐ रहने दो तुम भी। आई बड़ी प्रबन्ध करने वाली। "बराति-आशिकां बर शाखि-आहू १" तुम्हारे ही लिए तो किसी ने कहा था। बात करने का सलीक़ा नहीं और प्रबन्ध करेंगी हमारे शिकार का ! "लो सुनो पहला शिकार तो होगा पीर जी का। इस लिए साफ़ कपड़े पहन कर जाना चाहिये और नहीं तो अचकन तो बना हो। फूलदार रेशमी कनटोप अवश्य हो। जूता भी नया हो, तो मित्रों में इज्जत रहेगी। और इत्र तो घर में होगा ही ?"

बेगम—"वाहवाह, आप शिकार जाने की तैयारियाँ करते हैं या नवचन्दी के मेले की। ये मुहल्ले से जो लोग आय दिन शिकार जाते हैं। क्या

---

१ यह एक मुहावरा है फ़ारसी का, जिसका शब्दार्थ है—'आशिकों (प्रेमियों) का प्रेमपत्र हिरण के सींग पर।" इन मुहवरा की व्युत्पत्ति इस कहावत से हुई कि लैला का आशिक़ 'मजनू' लैला के नाम अपने प्रेम-पत्र लिखता और 'लैला' तक पहुँचाने के लिये उस पत्र को किसी जंगली हिरण के सींग पर बांध देता। वह समझता कि हिरण उसका पत्र लैला के पास पहुँचा देगा, परन्तु ऐसा कहां 'भव था। यह तो मजनूँ का सर्वथा पागळपन था। अस्तु यह महावरा उस बात का द्योतक है, जो किसी से न हो सके।—प्रभाकर।

वे भी बन ठन कर यूंही जाया करते हैं ?"

मिर्ज़ा—(ज़रा गर्म हो कर) "तुम पर्दे में रहने वाली क्या जानो। फिर वही पुरानी आदत। प्रत्येक बात में अड़ंगा। नहीं जाते हम। तुम अपने रुपये संभाल कर रखो, जाओ खाना भी नहीं खाते हम। बचत हो जायगी। समझेंगे भूख हड़ताल कर रहे हैं। कोई पूछेगा, तो कह देंगे कि घर में स्वराज्य हो गया है, अब शिकार कैसे जायें।"

बेगम—"भला इस में बिगड़ने की बात ही क्या है ? जाइये अपनी इच्छा के कपड़े सिलवा लीजिये।"

अब तो मिर्ज़ा जी मुस्करा कर बोले—"अब आई राह पर। तुम्हारे सिर की क़सम। ऐसे-ऐसे 'रंगदार जानवर' मार कर लाएं कि तुम्हारा घर अजाइब-खाना (संग्रहालय) बन जाय और मुहल्ले वालियां देखने आया करें।"

घर वाली की आज्ञा से फ़ीरोज़ी रंग का एक अचकन, कामदार जूता, और रेशमी कनटोप, जिस में कम से कम पाव भर रूई होगी, दो चार दिन में तैयार करवा लिया गया। अन्त में एक दिन सायं से पहले नौकर को आदेश दिया जाने लगा—

"तुम जाओ, यह करीम ख़ान पड़ोस में रहते हैं, उनको शिकार का निमन्त्रण दे आओ।"

नौकर अभी दो क़दम चला ही था कि आप गरज कर बोले—

"कहां जाते हो तुम ? उजड्ड कहीं के। बात तो पूरी सुन ली होती। कहना, मिर्ज़ा जी कम्पनी बहादुर के कारखाने की बन्दूक़ ले कर कल प्रातः शिकार खेलने जायेंगे। यदि आप तशरीफ़ लाएं, तो बड़ी कृपा होगी और हां यह भी कह देना कि कल कलां को उपालम्भ न दें कि हमें साथ नहीं ले गये। और 'सुनो, वह कल्लन मियां, जिनका घर चौक के सिरे पर है, उनको भी यही संदेश दे दीजो। अब खड़ा क्या मुंह देखता है, भागता क्यों नहीं। अरे रुक तो सही कम्बख्त। क्या बुरी

आदत है। पूरी बात भी नहीं सुनी और चल भागे। उनसे भी कह दीजो कि यदि कोई और साहिब बन्दूक चलती देखने का चाव रखते हों, तो उन्हें भी साथ ले आएं। और क्या कहेगा? ख़ास कम्पनी बहादुर के कारखाने की बन्दूक याद रखियो? हुज़ूर मलिका मुअज्ज़मा दामे इक़बाल हू, के देश की बनी हुई। चल भाग राह ले अपनी।"

अगले दिन सवेरे-सवेरे पाँच सात रसिक स्वभाव के व्यक्ति मिर्ज़ा जी के मकान पर आ उपस्थित हुए। परन्तु मिर्ज़ा जी हैं कि बाहर निकलने का नाम ही नहीं लेते और वे इधर से आवाज़ें दे रहे हैं—

"ऐ मिर्ज़ा जी! अब तशरीफ़ लाइये भी। शिकार का समय जाता है।"

अन्दर से आवाज़ आती है—

"अरे कोई दर्पण तो लाओ इधर, ज़रा देखें अचकन में सिलवट तो नहीं पड़ रहें।"

"अजी चलो भी। अभी तैयारियाँ समाप्त हुईं या नहीं," बाहर से आवाज़ आती है।

अन्दर से आवाज आती है—

"अजी, इत्र तो दे दो। हाँ दस बीस गिलौरियाँ डबिया में डाल दो," और फिर बाहर वालों से, "लो भाई आया," फिर नौकर से, "बावरची से कह दो, मसाला तैयार रहे। पीर जी की नियाज़ देंगे।"

लीजिये अब मिर्ज़ा जी बाहर निकलते हैं, परन्तु किस शान से?

नया चूड़ीदार पाजामा, कामदार जूता, फ़ीरोज़ी रंग का अचकन, रेशमी कनटोप और कन्धे पर लाल साटन के गिलाफ़ में लिपटी हुई बन्दूक। बाहर आते ही बोले—

"अब उठोगे भी। शिकारी तो मंज़िल पर भी जा पहुंचे।" सारांश, कुछ इस शान से, जैसे कोई मेंढा-बाज़ी जीत कर आया हो, आप मित्रों के झुरमुट में अकड़-अकड़ कर पग रखते हुए शिकार की खोज में घर

से चले। मैदानों में पहुंच कर शिकार की तलाश होने लगी। अब जो कोई यात्री इधर-उधर से गुजरता है, तो उस से बार-बार पूछा जाता है। अन्त में एक व्यक्ति ने बताया कि धान के खेत में मुर्गाबियाँ बैठी हैं। मिर्ज़ा जी बोले—

"भई! तुम्हें हमारे ही सिर की क़सम! सच कहना। कितनी हैं? किस ओर मुँह है? क्या कर रही हैं? चौकस तो नहीं? एक फ़ायर में दस-बीस तो रह जायँगी?"

"यह तो आप के निशाने पर निर्भर है या आपके भाग्य पर।"

"अजी भाग्य की ऐसी तैसी!" मिर्ज़ा जी ने अकड़ कर कहा, "ख़ुदा के मर्द अपना भाग्य आप बनाया करते हैं। आइये आप भी तमाशा देख लीजिये।"

अब मिर्ज़ा जी ने साटन के गिलाफ़ में से बन्दूक निकाली और उसे ज़मीन पर रख कर अलग हो कर खड़े हो गये। फिर एक दो पैंतरे बदले भुजाओं को हिलाया-जुलाया। फिर झुक कर बन्दूक को हाथ लगा कर माथे को उसी हाथ से स्पर्श किया और फिर "या पीर" कह कर भूमि से बन्दूक उठाई। अब बन्दूक चलाने का अभ्यास होने लगा। कठिनाई यह आ पड़ी कि एक आँख बन्द न होती थी। आख़िर रूमाल बाँध कर बाईं आँख को बन्द कर दिया गया। फिर हौले-हौले पग उठाते हुए धान के खेतों की ओर चले। अकस्मात् एक व्यक्ति पर दृष्टि पड़ी। दूर अपनी राह जाता था। मिर्ज़ा साहिब घबरा कर बोले—

"अरे भाई! कोई भागियो। उस गंवार से कहना रुक जाय।"

एक—"अजी मिर्ज़ा साहिब जाने भी दीजिये। वह तो बहुत दूर जाता है।"

मिर्ज़ा—"अजी तुम क्या जानो? यह जंगल के पखेरू हैं। मनुष्य की छाया से भी भागते हैं।"

"तो फिर आप कैसे मारेंगे?"

"घबराओ नहीं यार ! अभी दिखला देंगे हम," मिर्ज़ा साहिब ने मुसकुरा कर उत्तर दिया।

जहाँ तक ज़मीन शुष्क थी, सब साथी वहाँ तक गये, परन्तु जब खेतों में पानी आ गया, तो सब रुक गये। साथियों में से एक ने किसी ऊँची जगह पर खड़े हो कर इधर-उधर देखा, तो सामने एक जगह कुछ जानवर दिखाई दिये। वह बोला—

"मिर्ज़ा जी बधाई ! वह सामने शिकार बैठा है।"

मिर्ज़ा जी—"अरे भई, खुदा के लिये ज़रा धीरे तो बोलो। तो हाँ सच कहते हो मेरे यार ! तुम्हें हमारे ही सिर की क़सम, मज़ाक तो नहीं करते ?"

"अजी मज़ाक़ कैसा। आइये स्वयं देख लीजिये।" उसने मुर्ग़ाबियों की ओर संकेत करते हुए कहा।

"ऐ खुदा के लिये हाथ तो नीचा करो," मिर्ज़ा साहिब बोले, "जाने की क्या आवश्यकता है, मार कर देख लेंगे। लो भई ! सब चौकस रहियो। बन्दूक दगेगी। हाँ भागने वाले तैयार रहें। ऐसा न हो कि मारा हुआ शिकार हाथ से निकल जाय।"

अब आप झुक कर आगे बढ़ने लगे। साथियों में से एक साथ हो लिया। कोई दस-पांच क़दम गये होंगे कि साथी ने कहा—

"ज़रा उचक कर देख तो लो, बैठी हैं ? तसल्ली कर लो मेरे यार ! लज्जा न उठानी पड़े।"

"अजी आगे चलिये। अभी बहुत फ़ासला है," साथ वाले ने कहा, "परन्तु इस तरह तो जानवर देख लेंगे।"

मिर्ज़ा—"तो फिर खुदा के लिये तुम्हीं कोई युक्ति बताओ ना। देखो भय्या ! हमारी इज्ज़त का सवाल है।"

"लम्बे पड़ कर जाइये," साथ वाले ने कहा। "लाइये बन्दूक़ मैं पकड़ता हूं।"

अब मिर्ज़ा जी लम्बे पड़ कर आगे को रींगने लगे। दस-पाँच पग आगे गये होंगे कि कीचड़ से लतपत हो गये। परन्तु शिकार के शौक में इन बातों की कब परवाह करते थे, बराबर आगे बढ़ते गये। थोड़ी दूर गये और मुर्ग़ाबियों की "कवैं कवैं" करने की आवाज़ सुनाई दी। अब काना फुसकियाँ होने लगीं।

"ठहरो ज़रा खुदा की कुदरत का तमाशा तो देख लें।"

"होशियार रहिये उड़ न जायँ।"

मिर्ज़ा जी ने धीरे से सिर उठाया और फिर झट लम्बे पड़ कर बोले—

"अरे यार बैठी हैं। तुम्हारे हीं सिर की क़सम बैठी हैं। पीर जी की नियाज़ है, बैठी ही रहें तो मज़ा है। ज़रा और आगे हो लें, फिर मार लेंगे।"

परन्तु अब यह हालत थी कि साँस फूला हुआ था और हाथ काँप रहे थे। मुँह से "या पीर" के शब्द निकल रहे थे। साथी कहने लगा—

"यह पकड़िये बन्दूक अब। सीधी किजिये और मारिये।"

"भई ज़रा दम लेने दो। जल्दी क्या है," मिर्ज़ा ने साथी से बन्दूक लेते हुए कहा।

"यूँ नहीं चलेगी। उठ कर बैठिये और फिर चलाइये।"

"परन्तु इधर मिर्ज़ा जी ने सिर उठाया उधर मुर्ग़ाबियाँ उड़ कर दूसरे खेत में हो बैठीं।

"अजी सारा परिश्रम व्यर्थ गया ना। तुमने बन्दूक तो कभी चलाई नहीं और लगे हमें युक्ति बतलाने। क्या अजब जो पचीस-तीस रह जातीं," मिर्ज़ा ने झुन्ना कर कहा।

"ऐसा हुआ ही करता है। कुछ दूर तो गई नहीं। चलिये आगे चलिये। परन्तु अब सिर नहीं उठाइयेगा," साथी ने तसल्ली देते हुए कहा।

मिर्ज़ा बेचारे फिर साँप की तरह पेट के बल रींगने लगे। कुछ दूर गये, तो फिर मुर्ग़ाबियों की आवाज़ सुनाई दी। बड़े यत्न से घुटनों के बल बैठ गये और साथी के हाथ से बन्दूक़ पकड़ ली। परन्तु सारा शरीर काँप रहा था। अब फिर काना-फुसकियाँ होने लगीं।

"भई, ज़रा आगे जाओ ना, तुम देखो ना। यह बन्दूक कमबख्त क्या बुरी तरह काँप रही है। ज़रा पीछे से सहारा दिये रखना। हाँ बिल्कुल ठीक है। ऐ, ला-हौल-वला! भूल ही गये थे। यह हमारी जेब से रूई निकाल कर हमारे कानों में दे दो। बस ठीक।"

फिर साथी ने दो-चार पौदे इधर-उधर सरका कर जो देखा, तो मुर्ग़ाबियाँ साफ़ नजर आने लगीं।

"ऐ मिर्ज़ा जी, वे बैठी हैं। क्या मिली-जुली हैं। करो बिस्मल्लाह।"

अब मिर्ज़ा जी निशाना बाँधने लगे, तो दूसरी आँख भी बन्द करली। साथी ने चुटकी ली और संकेत से कहा कि एक आँख तो खुली रखो।"

"खुली तो है।"

परन्तु परेशानी की यह हालत थी कि न बन्दूक में कारतूस डालना याद रहा और न घोड़ा उठाना। परन्तु लबलबी बराबर दबाई जा रही है और बन्दूक की नाली बराबर नाच रही है। कभी आँख-खोल लेते कभी बन्द कर लेते। साथी ने फिर चुटकी ली और संकेत से बन्दूक खोलने को कहा, देखा तो कारतूस का नाम न था। मिर्ज़ा जी भुन्ना कर बोले—

"मेरे यार! केवल अनाड़ी हो तुम भी। पहले ही बतला दिया होता, ख़ैर, कोई बात नहीं, शिकार तो अब पीर जी की कृपा से कहीं जाता नहीं।"

अन्त में जब जेब में से कारतूस निकाल कर बन्दूक में डाला गया और निशाना बाँधने लगे, परन्तु बन्दूक की नाली कभी इधर जाती कभी उधर। साथ वाला पकड़ कर सीधी कर देता। मिर्ज़ा जी धीरे-धीरे कलिमा पढ़ते जाते थे।

"लो भई साक्षी रहना।" और साथ ही हाथ जो लबलबी पर पड़ा, तो बन्दूक चल गई और मिर्ज़ा साहिब धम से गिरे।

परन्तु जल्दी से उठ कर खड़े हुए और बोले—

"क्यों कितनी रहीं। कभी देखा ऐसा निशाना। अजी ग़ज़ब चाकू तो साथ लाना याद नहीं रहा।"

साथ वाला इधर उधर देख रहा था। मुसकुरा कर बोला—

"चाकू होता भी तो किस काम आता, मुर्गाबियाँ तो उड़ गईं हुज़ूर!"

मिर्ज़ा—"तो क्या सभी मर जातीं? भागो उठा लाओ जल्दी। देखना कोई धान में न छुप जाय?"

साथी आगे बढ़ कर इधर-उधर देखने लगा। मुर्ग़ाबी तो कोई दिखाई न दी। परन्तु कुछ फासले पर सफेद जानवर फड़फड़ाता हुआ नज़र आया।

"अजी वाह मिर्ज़ा जी मार लिया," कहता हुआ भागा, परन्तु उठा कर जो देखा, तो बगुला था। अब मिर्ज़ा जी चिल्ला-चिल्ला कर गला फाड़ने—

"ऐ कल्लन मियाँ! भागियो मार लिया। चाकू लाइयो। ऐ क्या मर गये सब।"

परन्तु किसी को क्या पड़ी थी कि मुफ्त में कीचड़ फलाँगता। इसलिये स्वयं ही बन्दूक उठा कर साथियों की ओर भागे। एक को बगुले की टाँगें पकड़ाईं। एक ने बाज़ू क़ाबू किये और मिर्ज़ा जी ने ऊँचे-ऊँचे तकबीर पढ़ते हुए चाकू फ़ेर दिया और वह भी इस जोर से कि सिर गर्दन से अलग हो गया।

परन्तु साथियों का यह हाल कि हँसते-हँसते पेट में बल पड़ रहे थे। मिर्ज़ा जी उनकी ओर देख कर बोले—

"क्यों जी कैसी बन्दूक चलाई। कुछ दाद तो दो।"

एक बोला—

"परन्तु मारा क्या ?"

दूसरा—"एक थान बगुला, लम्बी गर्दन वाला, लम्बी टाँगो वाला और क्या।"

कल्लन मियाँ बोले—

"परन्तु यह तो हराम हो गया।"

"हराम कैसे हो गया ?" मिर्जा जी ने क्रोध से पूछा।

"गर्दन से सिर अलग हो गया;" कल्लन मियां ने उत्तर दिया।

"चुप रहो मेरे यार !" मिर्ज़ा ने सिर हिलाकर कहा, "यहाँ दुनिया ही का बाबा आदम बदल चुका है और तुम अभी तक पुरानी लकीर ही पीटते चले जाते हो। तुम्हारे आधुनिक मौलवियों ने तो खिलाफ़त पनाही तुर्कों से लड़ना भी उचित कह दिया है और तुम अभी तक हलाल और हराम के चक्कर में फँसे हो। भय्या नवीन मुसलमानों के यहाँ तो मजहब भी एक रस्म हो कर रह गया है।"

"ऐ मिर्ज़ा जी बधाई हो" दूसरे ने कहा, "ये लोग क्या जानें, यह बगुला कैसा है। हकीमों ने लिखा है कि इस जानवर के खाने से दान्त सोने के हो जाते हैं।"

"भाइयो !" मिर्ज़ा साहिब बोले। यह सब पीर जी की करामात है। उन ही का नाम लेकर बन्दूक चलाई थी हमने। अफसोस तो यह है कि उनसे तावीज़ लाना भूल गये, नहीं तो तुम देखते `र लग गया होता।

\+ \+ \+

अब घर चलने की तैयारी होने लगी। एक मौलाम ने बगुले की टाँग में रस्सी डाल कर बन्दूक की नाली के सिरे से बाँध कर लटका दिया।

मिर्जा जी बोले—"अब लगे मजाक करने हम से।"

"काफ़िर हों, जो मजाक करे। शिकार मारने का मजा भी तो यही

है कि कोई देखे भी। यदि आप छिपाकर ले जायँगे, तो लोग समझेंगे कि खाली हाथ आये।"

मिर्ज़ा जी बन्दूक कन्धे पर रख कर आगे आगे हो लिये और बाकी लोग पंक्ति बाँधे पीछे पीछे चलने लगे। शहर में पहुँचे, तो लोग देख कर हंसते। मुंह हाथ कपड़े कीचड़ में लतपत हैं। कन्धे पर बन्दूक है और नाली के सिरे पर बगुला लटक रहा है। इस शान से टहलते-टहलते घर आये। शोर गुल सुनकर बेगम साहिबा दरवाज़े के पास आ खड़ी हुई थीं। आपको देखते ही 'ला-हौल पढ़कर' पीछे हटीं और बोली, "शर्म तो नहीं आती। जरा शीशा लेकर सूरत तो देखो। इतना भी न हुआ कि अचकन और जूता ही उतार लेते या कहीं मुंह हाथ धोकर शहर को पलटते।"

मिर्ज़ा साहिब बिगड़ कर बोले—"क्या बाहयात बके जाती हो। क्यों मुंह हाथ धोते। शिकार गये थे, हम शिकार मार कर लाए हैं। अचकन और जूते का तो झट खयाल आ गया, परन्तु इतना न हुआ कि किसी नौकर के हाथ फूलों के दो हार ही भिजवा देतीं। दो एक डूमनियों को ही बुलवाया होता। तुम्हरे तो मुंह से बधाई भी न निकली। तुम क्या जानो किस जान जोखिम से शिकार मारा है। शहर वालों से पूछो, हमारे बन्दूक चलाने की कहानियाँ चल निकली हैं और जानवर भी वह लाये हैं कि जिस हंडिया में पके वही सोने की हो जाय और जो खाय उसके दान्त भी सुनहरी हो जायें। चलो हटो सामने से देखती हो, कन्धे पर बन्दूक है हमारे।"

—"एम० असलम"

रेडियो

उस शाम को अजीब तमाशा हुआ। जब मैं खेल कूद कर थका हुआ वापस आया, तो भूल से रेडियो के पास जा बैठा। प्रोग्राम पढ़ा, तो जी ललचा उठा। एक स्टेशन से एक बूढ़े अनुभवी शिकारी अपने जीवन की घटनाएँ सुना रहे थे। दूसरे स्टेशन से एक फिल्मी हीरो साहिब अपने रूमान भरे जीवन पर प्रकाश डाल रहे थे और तीसरे स्टेशन से बच्चों के विशेषज्ञ वयोवृद्ध, बच्चों के मनस्तत्त्व और शिक्षा-दीक्षा, लालन-पालन पर भाषण कर रहे थे।

तीन प्रोगाम एक ही समय पर शुरू थे। अब मन में रस्सा-कशी आरंभ हो गई। फिर सोचा कि बच्चों से हमें क्या लेना। वे अपना मन-स्तत्त्व अपने पास ही रखें। यहाँ अपना मनस्तत्त्व संभाले नहीं संभलता। अब रही वह अभिनेता साहिब की रूमान भरी कहानी। उसे सुन कर चाहते न चाहते स्पर्धा सिर पर सवार हो जायगी। अच्छा यही है कि शिकारी साहिब की बातें सुनी जायँ। बन्दूक तो हमें भी चलानी आती है।

न जाने क्या मुसीबत थी, वह स्टेशन ही न मिलता था। अजीब अजीब आवाजें आ रही थीं। कव्वालियाँ हो रही हैं। कुत्ते भौंक रहे हैं, सीटियाँ बज रही हैं, बादल गर्ज रहे हैं, परन्तु वह स्टेशन ही नहीं लगता। कुछ ऐसा मौसम भी ख़राब नहीं था। सोचा शायद रेडियो बिगड़ गया है। अन्त में तंग आ कर मैंने रुस्तम मियाँ को बुलाया। ये हमारे पुराने नौकर थे और रेडियो के आशिक़ थे। रेडियो उनके हवाले कर के मैं सोफे पर लेट गया। रुस्तम को तुरन्त स्टेशन मिल गया।

शिकारी महोदय भाषण आरम्भ कर चुके थे। आवाज़ आई—

"हाथी का शिकार बहुत कठिन है। क्योंकि हाथी स्पोर्टसमैन बिलकुल नहीं होता। हाथी शत्रुता-प्रिय, शत्रु-स्वभावी, प्रतिशोध-परायण, और कुछ कमीना सा जानवर है। यदि कोई हाथी सुन रहा हो तो मैं क्षमा चाहता हूँ। परन्तु यह बात सच है कि यदि हाथी ऐसा नामाकूल या असभ्य न होता, तो शिकारियों से इतनी सी बात पर लड़ता झगड़ता क्यों? देखिये ना शिकारी केवल उसे मार डालना ही चाहते हैं ना और तो कुछ नहीं चाहते। बस इतनी सी बात के लिये इतनी शत्रुता रखना, बदला लेना, यह करना वह करना; ये सब बातें हाथी को इन्सानियत से गिरा देती हैं। अन्य जानवरों को देखिये शिकारियों से कितनी अच्छी तरह पेश आते हैं। दिसम्बर सन् २० की घटना है। पन्द्रह तारीख़ थी और यही रात के कोई ग्यारह बजे थे। मैं जंगल में एक हाथी की प्रतीक्षा कर रहा था। कमबख्त ने बड़ा परेशान किया। अन्त में रात के दो बजे कहीं आया। अकेला नहीं, एक और हाथी को भी साथ ले आया।

मैंने गोली चलाई, मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही, जब मैंने देखा कि वह गोली केवल एक हाथी को लगी, दोनों हाथियों को नहीं लगी। एक हाथी वहीं बैठ गया और दूसरा मेरी ओर लपका। अगले दिन मुझे पता चला कि वह हथनी थी—अर्थात् मिसरा हाथी। खैर तो हथनी ने अपने सूँड से वृक्ष की कई टहनियाँ तोड़ दीं और मुझे भी नीचे पटख़ दिया। संभवतः मैं बताना भूल ही गया कि मैं एक वृक्ष पर बैठा था। मैं गिरते ही उछला और उछलते ही फिर गिरा, फिर उठा, तुरन्त गिरा और उठा और भागा। हथनी ने पीछा किया। कोई पन्द्रह मील तक भागता रहा—ठहरिये पन्द्रह नहीं यही कोई दो तीन मील भागा हूंगा, इतने में मुझे अवसर मिल गया और हथनी को चक्कर देकर मैं एक वृक्ष पर चढ़ गया। हथनी ने मिनटों में उस वृक्ष को भी गिरा लिया। मैं जीवन से सर्वथा निराश हो चुका था और अन्तिम आक्र-

मरण के लिये तैयार हो गया।

मैंने हथनी के सामने खड़े होकर निशाना बांधा और घोड़ा दबा दिया—बन्दूक का घोड़ा। मैं घोड़े पर सवार नहीं था। भूमि पर खड़ा था। घोड़ा तो दबा दिया, परन्तु बन्दूक से कुछ नहीं निकला। अन्दर कोई कारतूस होता तो निकलता भी। अब हथनी सूंड उठा कर चिंघाड़ती हुई मुझ पर आक्रमणकारी हुई। मेरे हाथ पाँव शिथिल हो चुके थे। परन्तु मैंने क्या किया। मैंने साहस करके उसका हाथ थाम लिया और आँखों से लगा कर कहा कि यदि तुम्हें मेरे जीवन से निकाल दिया जाय तो मेरा जीवन सर्वथा शून्य हो जायगा। तुम्हारे दम से मेरे अंधेरे जगमगा रहे हैं। तुम्हारी ही यह सब चहल-पहल है। वह कुछ मुसकुराई और मैं मूर्छित होते होते बचा। मैंने उसका हाथ अपने हाथ में रखा और अपना हाथ उसके हाथ में रहने दिया। चारों ओर निस्तब्धता थी केवल एक उल्लू था, जो अपनी प्यारी और सुरीली आवाज से इस नीरवता को तोड़ रहा था। हमारे सिर पर तारों की छत थी और पाँव के नीचे ज़मीन थी। हमारे सामने पूर्व था और पीठ पीछे पश्चिम, दाहिने हाथ दक्षिण था और बाएँ हाथ उत्तर। ऐसे रूमान भरे वातावरण में मैंने प्रणय का प्रदर्शन किया और उसने मुसकुरा कर गर्दन झुका ली।

जब दिल की धड़कन ज़रा दूर हुई, तो मैंने उसका हाथ अपनी आँखों से लगाया। संभवतः मैंने यह नहीं बताया कि मैंने उस का हाथ छोड़ दिया था। हठात् मन ने कहा—साहस करो, और आज ही जीवन भर के लिए अटूट प्रणय की गाँठ बाँध लो। अस्तु मैंने साहस किया और उसकी आंखों में आँखें डाल कर बोला—"क्या तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार करोगी ?"

उसने स्वीकृति के रूप में सिर हिला दिया।

मैं उस के सामने खड़ा हो गया और चिल्ला कर बोला—"देखो, मैं तुम्हें अन्तिम बार कह रहा हूँ कि यदि तुम स्कूल नहीं गईं, तो

निश्चय ही मिट जाओगी। ऐसी हठीली लड़की मैंने आज तक नहीं देखी। आने दो तुम्हारी अम्मी को, देखो तुम्हारी कैसी दुर्गति बनवाता हूँ।"

इधर उसने मचलना आरम्भ कर दिया। पहले तो केवल मचलती रही, फिर ठिनकना और विधिपूर्वक रोना आरंभ कर दिया। बहुतेरा मनाया, मिठाई के वचन दिये, सिनेमा का लोभ दिया, लाख विनय-प्रार्थना की, परन्तु उस के कान पर जूं तक न रींगी। ये बच्चे भी अजीब होते हैं। इन से ज़रा शराफ़त से पेश आओ, तो अकड़ जाते हैं। अकस्मात् मुझे खयाल आया कि इन में स्पर्धा का भाव बहुत प्रबल होता है। अतः मैंने पड़ोस के एक बच्चे की प्रशंसा के पुल बांधने आरम्भ कर दिये। मैंने कहा—

"ज़रा मुन्नू को देखो, कितना प्यारा बच्चा है। कभी आज तक ज़िद नहीं की, न कभी तुम्हारी तरह रोता है। यहाँ तक कि यदि उसे पीट भी दो, तब भी नहीं रोयगा। तुम से वह लाख गुणा अच्छा है। उसकी आदतें नहीं देखी तुम ने, कितनी अच्छी और सुथरी हुई है। उसकी प्रत्येक बात से स्पष्ट विदित होता है कि वह सब से विभिन्न है। वह सदा बहुत सवेरे उठता है। अभी अंधेरा ही होता है कि वह पानी पीने जाता है। पानी पी कर ज़ोर से डकारता है और सारा जंगल गूँजने लगता है। चरने वाले पशु, उड़ने वाले पक्षी और हिंस्र जन्तु सब जाग उठते हैं। इसके बाद शेर शिकार खेलने निकल जाता है। दोपहर को बीवी बच्चों के साथ खाना खाता है। इसके पश्चात् लेट जाता है। सायं शेर खेल खेलता है या किसी दूसरे जंगल के शेर के यहाँ मिलने चला जाता है। कई बार दूसरे जंगलों के शेर, अपने परि-वारों के साथ उसके यहाँ आ जाते हैं। रात के खाने के बाद शेर की अध्यक्षता में एक जलसा शुरू होता है, जिस में जंगल का प्रत्येक जानवर सम्मिलित होता है। उस समय शेर भावी प्रातः के शिकार के लिए कुछ अच्छे जानवर चुन लेता है।

रात को सोने से पहले शेर एक बार पानी अवश्य पीने जाता है। वास्तव में शेर को प्यास बहुत लगती है ! शेर का शिकार करने का सर्वोत्तम समय वह है, जब वह पानी पीने जा रहा हो, जब वह पानी पीने का इरादा रखता हो और यह प्रकट कर दे कि उसे प्यास लगी है, तो यही कोशिश होनी चाहिए कि उसे दूध पिलाया जाय। उसे यथा सभव पानी न दिया जाय। क्योंकि इस प्रकार उस के आमाशय पर बुरा प्रभाव पडेगा। दूध मे शक्कर कम होनी चाहिये। मैं तो यही कहूंगा कि बिना शक्कर का दूध सबसे अच्छा है। कई लोग बच्चो को यख्नी पिलाते है। मैं इसका घोर विरोधी हूँ। मैंने आज तक बच्चो को कोई गरिष्ट वस्तु नही पिलाई।

एक बात और है, वह यह कि दूध पीते समय बच्चे का ध्यान किसी और तरफ़ होना चाहिये—जैसे रेडियो बज रहा हो, रेडियो पर कोई भाषण हो रहा हो या पक्का राग हो रहा हो (बच्चे पक्के रागों को अत्यन्त पसन्द करते है और भाषण सुन कर वे बहुत ही विभोर हो जाते हैं।) साराश यह कि यदि संगीत हो, तो बहुत अच्छा हो, क्योंकि रूमान या प्रणय और संगीत का आपस मे अपीव घनीष्ट संबंध है। विशेष रूप से प्रणय-अभिव्यक्ति के समय यदि सौभाग्यवश आस-पास कोई गा रहा हो या सितार बजा रहा हो, तो बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। यदि कोई बिल्कुल निकट खड़ा ढोल बजा रहा हो, तो सौभाग्य समझिये—संगीत की सिफ़ारिश से प्रायः देखा गया है कि प्रणय-प्रार्थना स्वीकृत हो जाती है। मुझे वह रात नही भूलती, जब मैंने एक पाषाण-हृदय के चरणों पर हृदय रख दिया था। वह रात कितनी प्यारी थी, कितनी मनोहर थी। चारों ओर सन्नाटा था। केवल कुछ झींगुर गा रहे थे, अन्यथा निस्तब्धता का साम्राज्य था। मैं सर्वथा मौन था। इतने में एक आहट हुई और कुछ बन्दर बड़ी तेजी से मेरे सामने से गुज़र गये। हठात् मैंने एक छाया देखी, जो मेरी ओर आ रही थी। वह एक रीछ था। मैंने अपनी बन्दूक संभाल ली और साँस

रोककर बैठ गया। परन्तु रीछ ने समझ बूझ और दूरदर्शिता से जान लिया और रास्ता बदल लिया।

इतने में एक भेड़िया मेरे पास आ खड़ा हुआ, जिसे मैंने "हुश्त" कहकर भगाना चाहा। वह न भागा। फिर उसे डराया धमकाया, परन्तु वह वहाँ से बिल्कुल नहीं हिला और सामने खड़ा मुझे घूरने लगा। अन्त में मेरे सब्र का प्याला लबालब भर गया और मैंने पाँचों उंगलियों का वह थप्पड़ मारा मुंह पर कि मन साफ हो गया। थप्पड़ लगाना था कि उसने बड़े ज़ोर से रोना आरम्भ कर दिया। रो-रो कर आकाश सिर पर उठा लिया। मैं बहुत घबराया, क्योंकि उसकी चीख पुकार से सारा मुहल्ला इकट्ठा हो गया। जब वह बिलक-बिलक कर रो रहा था, तो मुझे पहली बार इस बात का अनुभव हुआ कि बच्चे को मारना नहीं चाहिये। कोमल भाव से समझाना चाहिये, प्रेम और प्यार से यदि उसे पुचकार के कोई बात कही जाय, तो वह तुरन्त मान जाता है। प्रेम से असंभव से असंभव काम संभव हो जाते हैं। प्रेम तो सबसे बड़ा जादू है। परन्तु हिम्मत कभी नहीं हारनी चाहिये। अपने भाग्य पर कभी संदेह नहीं करना चाहिये, बड़े सन्तुष्ट भाव से प्रेम करना चाहिये।

मैं स्वयं कई बार परीक्षण कर चुका हूँ, आत्म-सम्मान वह चीज़ है, जिसकी प्रेम-प्रीति में बहुत आवश्यकता है और यह भी शत-प्रतिशत सच है कि सच्चे हृदय से की हुई प्रीति कभी व्यर्थ नहीं जाती। संभव है, आप इसे मज़ाक समझ रहे हों। यदि सचमुच मज़ाक समझ रहे हैं, तो बड़ा खेद है—आप विश्वास कीजिये, यह अत्यन्त गंभीर समस्या है। इस पर एक भोले-भाले निष्कपट जीवन का आधार है। भला खुराक अथवा भोजन अच्छा न मिले, तो पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा क्या खाक होगी। आपका कर्तव्य है कि बच्चे की पूरी-पूरी देख-भाल करें। उसके आहार का विशेष ध्यान रखें। नौकरों पर कदापि विश्वास न करें। मैंने अपनी आँखों से देखा है कि एक नौकर पाँच

महीने के बच्चे को कीमा और पराठे खिला रहा था और बच्चा मजे से खा रहा था। एक दूसरे नौकर ने दो महीने के बच्चे को सालम (पूरा) मुर्ग़ा भून कर खिला दिया। नौकर सदा असावधानी से काम करते हैं और बच्चों का मुआमला बड़ा नाज़ुक है। ज़रा सी असावधानी से सारा मुआमला चौपट हो जाता है। निशाना ठीक नहीं रहता। जंग (जगार) लग जाता है। शक्ल बिगड़ जाती है। हुलिया तबदील हो जाता है। सारांश यह कि असावधानी और ठीक संभाल न होने से बन्दूक का सत्यानाश हो जाता है। इसलिये बन्दूक को सप्ताह के सप्ताह साफ करना चाहिये। अच्छा होगा कि आप यह काम स्वयं करें।

सबसे पहले बन्दूक को बिल्कुल खाली कर लें। क्योंकि कई बार ऐसा हुआ है कि कारतूस अन्दर रह गये और चल पड़े। ऐसी कई घटनाएं हो चुकी हैं। इसके बाद फिर शुद्ध बन्दूक के तेल की मालिश करें और ध्यान से देखते जायें कि कहीं छोटा-मोटा सा छेद तो नहीं है या कहीं से टूट-फूट तो नहीं गई। क्योंकि यदि ज़रा छेद हुआ, तो दूध बाहर निकल जायगा और बच्चा भूखा रह जायगा। वैसे दूध पिलाने की यह बोतल अपना जवाब आप ही है। इसके असंख्य लाभ हैं। सबसे बड़ा लाभ यह है कि बच्चा जब चाहे दूध पी सकता है और जब चाहे इन्कार कर सकता है। बोतल के साथ एक पत्र भी मिलता है, जिसमें आदेश लिखे होते हैं। मैं आपकी सुविधा के लिये आदेश पढ़े देता हूं। सुनिये - जब बच्चा एक बार दूध पी चुके, तो उसे गर्म पानी में डाल दीजिये (बोतल को) और दो तीन दिन बोतल का प्रयोग कर चुके, तो उसे उबलते हुए पानी में अच्छी तरह उबाला जाय और समस्त भागों को अलग-अलग रख दिया जाय (बोतल को) और बच्चे को दूध पिलाते समय उसके सिर पर हाथ फेरना चाहिये (बच्चे के सिर पर) और प्रतिदिन प्रयोग से पहले उसे धूप में सुखाकर साफ कर लेना चाहिये (बोतल को)। बच्चे को बहला फुसलाकर और चुमकार-चुमकार कर दूध पिलाना चाहिये और यह कभी नहीं भूलना चाहिये

कि यदि आपने बच्चे को एक बार भी धमकाया, तो उसके दिल में न केवल आपका डर बैठ जायगा, अपितु बोतल का भी। और संभव है वह एक दिन बड़ा होकर आपको ही धमका दे, तो मै आपको यही परामर्श दूंगा कि आप बच्चे को अपने पास बिठा ले। पहले उसे गुदगुदाएँ। उसकी हथेलियो और उसके तलवों में गुदगुदी करें। जब वह हँसने लगे, तो उसे और भी गुदगुदाएं और खूब प्यार करें। इसके बाद उसकी गोद में सिर रख कर अपने दिल के भेद कह दे और यह शिअ्‌र अवश्य पढ़ें—यूँ जिन्दगी गुज़ार रहा हूँ तिरे बगैर।

जैसे कोई गुनाह किये जा रहा हूँ मैं।।

और फिर बड़े प्रभावशाली लहजे में कहें कि यदि तुमने मुझसे विवाह न किया, तो मै या तो आत्म-हत्या कर लूँगा या अपने आपको मार डालूंगा। यह सब तुम्हारी मुहब्बत का दोष है, मेरा दोष कदापि नही। मेरी आंखों का दोष है -यहाँ आप संयम या संयत भाव से काम लें। यदि आपने वह शिअ्‌र—

'आंखों' का था कुसूर छुरी दिल पे चल गई।

पढ़ दिया, तो सारा किया कराया मिट्टी मे मिल जायगा। उत्तर की प्रतीक्षा अवश्य करें। संभव है कि उत्तर में विलम्ब हो जाय, परन्तु उत्तर अवश्य मिलेगा—उत्तर सदा मिलता है। विभिन्न जानवर विभिन्न रीतियों से उत्तर देते हैं। रीछ छेड़ का उत्तर थप्पड़ से देता है। शेर को छेड़ो, तत्काल काट खायगा। ऊँट कुछ नही कहता, मुस्करा कर क्षमा कर देता है। हाथी अपनी सूंड से वह जोर से चाबुक मारता है कि 'चौदह भुवन जगमगा उठते हैं'[1]। चीता अपनी पूंछ से गुदगुदियाँ करने लगता है। गैंडा तो पहले सोचता रहता है, फिर एक दम निकट आ कर एक भीषण दुलत्ती मारता है। दर्याई

---

१. मुहावरा है—होश गुम हो जाना। सुधि न रहना। सुट्टी पट्टी भूल जाना।

बकरा छेड़ का उत्तर छेड़ से देता है—परन्तु उत्तर अवश्य मिलता है। उत्तर उत्तर में भी भेद है और यदि मुहब्बत का उत्तर मुहब्बत से न मिले, तो जीवन बेकार है। इस अवस्था में मनुष्य को तुरन्त मर जाना चाहिये। यदि वह स्वयं न मर सके, तो आत्म-हत्या कर लेनी चाहिये। आत्म-हत्या अत्यन्त अच्छी चीज़ है, स्वास्थ्य के लिये लाभदायक है। मैं स्वयं पाँच बार आत्म-हत्या कर चुका हूँ। क्षमा कीजिये कि मेरा मतलब है कि आत्म-हत्या का प्रयत्न कर चुका हूं। आत्म-हत्या का प्रयत्न करना भी आत्म-हत्या के समान होता है। दोनों का समान दर्जा है, एक जैसा सम्मान है और एक सा पुण्य है—खड़ड़—खड़ड़ शूँ—चटाख़—चूँ चूं—मियाँ मट्ठू हूँ—खड़ड़ नमक दो रुपये छटाँक, गेहूँ साढ़े पन्द्रह आने सेर। माश पौने दो रुपये मन। बैलों की जोड़ी सत्तर रुपये की। हाथियों की जोड़ी चार सौ रुपये की। बन्दरों की जोड़ी मुफ़्त और उल्लुओं की जोड़ी बिल्कुल ही मुफ्त और मोहे पनघट पे नन्दलाल छेड़ गयो री। मोहे छेड़ गयो री,—सा मामा ना ना री गयो री—वास्कोडी गा मा पा धा नी सा गयो री—

आज छटे महीने की छटी तारीख है और इस समय छः बज कर छः मिनिट है। अब फारसी में खबरें सुनिये या चलिये रहने दीजिये—कल दिल्ली में पाँच मिनट वर्षा हुई थी, जिससे मुलतान में बड़ी खुशियाँ मनाई जा रही हैं—खड़ड़—खड़ड़।

मैं हड़बड़ा कर उठा और रेडियो बन्द कर दिया। मैं यही सोच रहा था कि यह क्या चीज़ थी, जो मैंने अभी-अभी सुनी। रुस्तम मियाँ क़समें खा रहे थे कि वे रेडियो के पास बैठे अवश्य थे, परन्तु उन्होंने उसे छेड़ा बिल्कुल नहीं और यह सारी शरारत रेडियो की थी।

—"शफ़ीक़ुर्रहमान"

....देख कबीरा रोया

नगर-नगर ढण्डोरा पीटा गया कि जो व्यक्ति भीख माँगेगा, उसको गिरफ्तार कर लिया जायगा। गिरफ्तारियाँ आरम्भ हुईं। लोग खुशियाँ मनाने लगे कि बहुत पुराना अभिशाप दूर हो गया।

कबीर ने यह देखा, तो उसकी आँखों में आँसू आ गये। लोगों ने पूछा, "ऐ जुलाहे! तू क्यों रोता है?"

कबीर ने रो कर कहा—"कपड़ा दो चीज़ों से बनता है—ताने और पेटे से। गिरफ्तारियों का ताना तो आरंभ हो गया, पर पेट भरने का पेटा कहाँ है?"

एक एम० ए०एल०-एल० बी० को दो सौ खड्डियाँ अलाट हो गईं। कबीर ने यह देखा, तो उसकी आँखों में आँसू आ गये।

एम० ए० एल-एल० बी ने पूछा, "ऐ जुलाहे के बच्चे, तू क्यों रोता है? क्या इसलिये कि मैंने तेरा अधिकार छीन लिया है?"

कबीर ने रोते हुए उत्तर दिया—"तुम्हारा कानून तुम्हें यह नुक्ता समझाता है कि खड्डियाँ पड़ी रहने दो और सूत का जो कोटा मिले, उसे बेच दो। मुफ्त की खटपट से क्या लाभ? परन्तु यह खट खट ही जुलाहे की जान है।"

छपी हुई पुस्तक के फर्मे थे, जिनके छोटे बड़े लिफ़ाफ़े बनाए जा रहे थे। कबीर का उधर से गुज़र हुआ। उसने दो तीन लिफ़ाफ़े उठाए और उन पर छपा हुआ लेख देख कर उसकी आँखों में आँसू आ गये। लिफ़ाफ़े बनाने वाले ने आश्चर्य से पूछा—

"मियाँ कबीर तुम क्यों रोने लगे ?"

कबीर ने उत्तर दिया—"इन कागज़ों पर भक्त सूरदास की कविता छपी हुई है। लिफ़ाफ़े बना कर अनादर न करो।"

लिफ़ाफ़े बनाने वाले ने आश्चर्य से कहा—

"जिस का नाम सूरदास है, वह भक्त नहीं हो सकता।"

कबीर ने फूट-फूट कर रोना आरंभ कर दिया।

एक ऊँचे भवन पर लक्ष्मी की बहुत सुन्दर मूर्त्ति स्थापित थी। लोगों ने जब उसे अपना दफ्तर बनाया, तो उस मूर्त्ति को टाट के टुकड़ों से ढांप दिया। कबीर ने यह देखा तो आंखों में आंसू उमड़ आए। दफ्तर के लोगों ने उसे ढारस दिया और कहा, "हमारे धर्म में यह बुत उचित नहीं।"

कबीर ने टाट के टुकड़ों की ओर अपनी भीगी हुई आंखों से देखते हुए कहा—"खूबसूरत चीज़ को बदसूरत बना देना भी किसी धर्म में उचित है!"

दफ्तर के लोग हँसने लगे, कबीर ढाड़ें मार-मार कर रोने लगा।

पंक्ति में सजी हुई फौजों के सामने जरनैल ने भाषण करते हुए कहा—"अनाज कम है, कोई परवाह नहीं। फ़स्लें तबाह हो गई हैं, कोई चिन्ता नहीं! हमारे सिपाही शत्रु से भूखे ही लड़ेंगे।"

दो लाख फौजियों ने जिन्दाबाद के नारे लगाने आरंभ कर दिये।

कबीर चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा। जरनैल को बहुत गुस्सा आया। वह पुकार उठा—"ऐ व्यक्ति! बता सकता है, तू क्यों रोता है ?"

कबीर ने रोनी आवाज में कहा—"ऐ मेरे बहादुर जरनैल! भूख से कौन लड़ेगा ?"

दो लाख व्यक्तियों ने कबीर मुर्दाबाद के नारे लगाने शुरू कर दिये।

+ + +

"भाइयो दाढ़ी रखो, मूँछें कुतरवाओ और शरई पाजामा पहनो।—बहनो ! एक चोटी करो। सुर्खी पाउडर न लगाओ। बुर्का पहनो।"

बाज़ार में एक व्यक्ति चिल्ला रहा था कबीर ने यह देखा। उसकी आँखें आँसुओं से डबडबा आईं।

चिल्लाने वाले व्यक्ति ने और अधिक चिल्ला कर पूछा, "कबीर, तू क्यों रोने लगा ?"

कबीर ने अपने आँसू रोकते हुए कहा—"तेरा भाई है न तेरी बहन और यह जो तेरी दाढ़ी है, इस में तू ने वस्मा क्यों लगा रखा है ?—क्या यह सुफ़ेद अच्छी नहीं थी ?

चिल्लाने वाले ने गालियाँ देनी आरंभ कर दीं। कबीर की आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

एक जगह बहस हो रही थी।

"साहित्य-साहित्य के लिये है।"

"सर्वथा बकवास है। साहित्य जीवन के लिये है।"

"वह ज़माना लद गया।—साहित्य प्राप्रेगण्डे का दूसरा नाम है।"

"तुम्हारी ऐसी की तैसी—"

"तुम्हारे स्टालिन की ऐसी की तैसी—"

"तुम्हारे रूढ़ी-वादी और अमुक अमुक रोगों के मारे हुए फ़लाबियर और बाउलियर की ऐसी की तैसी।"

कबीर रोने लगा। बहस करने वाले बहस छोड़ कर उसकी ओर आकर्षित हुए। एक ने उस से पूछा—

"तुम्हारे उपचेतन मन में अवश्य कोई ऐसी वस्तु थी, जिसे ठेस पहुँची है।"

"दूसरे ने कहा—"ये आँसू बूर्जवाई दुःख का परिमाण है।"

कबीर और अधिक रोने लगा। बहस करने वालों ने तंग आ कर एक साथ प्रश्न किया—"मियाँ यह बताओ कि तुम रोते क्यों हो ?"

कबीर ने कहा—"मैं इस लिये रोया था कि आप की समझ में आ जाए - साहित्य-साहित्य के लिए है या साहित्य जीवन के लिये है।"

बहस करने वाले हंसने लगे। एक ने कहा—"यह पोल्तारी मस्खरा है।"

दूसरे ने कहा—"नहीं बूर्जवाई बहुरूपिया है।"

कबीर की आखों में फिर आँसू आ गये।

क़ानून लागू हो गया, नगर की समस्त वेश्याएँ एक महीने के अन्दर अन्दर विवाह कर लें और शरीफ़ाना जीवन व्यतीत करें।

कबीर एक चकले से गुज़रा, तो वेश्याओं के उतरे हुए चेहरे देख कर उसने रोना आरंभ कर दिया। एक मौलवी ने उस से पूछा—"मौलाना, आप क्यों रो रहे हैं?"

कबीर ने रोते हुए उत्तर दिया—"नीति के अध्यापक इन वेश्याओं के पतियों के लिये क्या व्यवस्था करेंगे?"

मौलवी, कबीर की बात न समझा और हंसने लगा। कबीर की आँखें और अधिक आंसू बहाने लगीं।

दस बारह हज़ार की सभा में एक व्यक्ति भाषण कर रहा था—"भाइयो! विरोधियों से छुड़ा कर लाई हुई महिलाओं की समस्या हमारी सब से बड़ी समस्या है। इस का हल हमें सब से पहले सोचना है। यदि हम ग़ाफ़िल रहे, तो ये औरतें वेश्यालयों में चली जायेंगी—बाजारी बन जायेंगी।—सुन रहे हो, बाज़ारी बन जायेंगी। तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम उनको भीषण भविष्य से बचाओ और अपने घरों में उन के लिये स्थान पैदा करो। अपनी, अपने भाई की या अपने बेटे की शादी करने से पहले तुम्हें इन औरतों को कदापि-कदापि भूलना नहीं चाहिये।"

कबीर फूटफूट कर रोने लगा। भाषण करने वाला रुक गया।

कबीर की ओर संकेत कर के उसने ऊँची आवाज में उपस्थित लोगों से कहा —"देखो इस व्यक्ति के दिल पर कितना प्रभाव हुआ है ?"

कबीर ने भर्राई हुई आवाज में कहा, "शब्दों के बादशाह ! तुम्हारे भाषण ने मेरे हृदय पर कुछ प्रभाव नहीं किया—मैंने जब सोचा कि तुम किसी मालदार औरत के साथ शादी करने के उद्देश्य से अभी तक कवांरे बैठे हो, तो मेरी आँखों में आँसू आ गये।"

एक दुकान पर यह बोर्ड लगा था, "जिन्नाह बूट हाउस।"

कबीर ने देखा, तो ताबड़ तोड़ रोने लगा।

लोगों ने देखा कि एक व्यक्ति खड़ा है, बोर्ड पर आँखें जमी है और रोए जा रहा है। उन्हों ने तालियाँ बजाना आरंभ कर दीं—"पागल है, पागल है।"

देश का सब से बड़ा क़ाइद (नेता) चल बसा, तो चारों ओर शोक के बादल छा गये। प्रायः लोग भुजाओं पर काले बिल्ले बाँध कर फिरने लगे। कबीर ने यह देखा, तो उसकी आँखों में आँसू आ गये। काले बिल्ले वालों ने उस से पूछा—"क्या दुःख पहुँचा, जो तुम रोने लगे ?"

कबीर ने उत्तर दिया—"ये काले रंग की चैंदियाँ (बिल्ले) यदि जमा कर ली जायें, तो सैंकड़ों की नग्नता रुक सकती है।"

काले बिल्ले वालों ने कबीर को पीटना आरंभ कर दिया। तुम साम्यवादी हो—कम्यूनिस्ट हो—फिफ्थ कालिमस्ट हो ! पाकिस्तान के ग़द्दार हो।

कबीर हँस पड़ा, "परन्तु दोस्तो, मेरे बाजू पर तो किसी रंग का बिल्ला नहीं।"

—सआदत हसन 'मण्टो'

कुत्ते

प्राणि-तत्त्व-विज्ञान के प्रोफेसरों से पूछा, सलोत्रियों से जानने का प्रयत्न किया, स्वयं सिर खपाते रहे, परन्तु समझ में न आया कि आखिर कुत्तों का लाभ क्या है ? गाय को लीजिये। दूध देती है। बकरी को लीजिये। दूध देती है और मेंगनियाँ भी। ये कुत्ते क्या करते हैं ? कहने लगे कि कुत्ता बड़ा वफ़ादार जानवर है। अब जनाब वफ़ादारी यदि इसी का नाम है कि सायं के सात बजे तक भौंकते चले गये, तो हम लण्डूरे ही भले। कल ही की बात है कि रात के कोई ग्यारह बजे एक कुत्ते की तबीअत जो ज़रा गुदगुदाई, तो उन्होंने बाहर सड़क पर आ कर समस्या-पूर्ति के लिये एक पद (मिस्रा) छोड़ दिया। एक आध मिनट के पश्चात् सामने के जंगले में से एक कुत्ते ने मतला (१) अर्ज़ कर दिया, अब जनाब, एक पुराने अनुभवी उस्ताद को जो क्रोध आया, एक हलवाई के चूल्हे में से बाहर लपके और झुन्ना कर पूरी ग़ज़ल मक़ता (२) तक कह गये। इस पर उत्तर पूर्व की ओर से एक पारखी कुत्ते ने ज़ोरों की दाद दी। अब तो हज़रात! वह मुशाइरा गर्म हुआ कि कुछ न पूछिये। कमबख़्त कुछ दो-ग़ज़ले सिग़ज़ले लिख लाए थे। कई एक ने आशु कवियों की भाँति यहीं खड़े-खड़े क़सीदे के क़सीदे (३) पढ़ डाले। वह

---

१. ग़ज़ल का पहला 'शिअ्र'। २. ग़ज़ल का अन्तिम शिअ्र। प्रायः लेखक इस शब्द को 'शेर' लिखते हैं, परन्तु यह सर्वथा ग़लत है। इससे न तो उर्दू के उच्चारण और न देवनागरी लिपि से न्याय होता है —प्रभाकर

३. वह कविता जिस में किसी की प्रशंसा या निन्दा का वर्णन हो।

हंगामा गर्म हुआ कि ठण्डा होने में न आता था। हम ने खिड़की में से हज़ारों बार 'आर्डर, आर्डर' पुकारा। परन्तु ऐसे अवसरों पर प्रधान की भी कोई नहीं सुनता। अब उनसे कोई पूछे कि मियाँ तुम्हें ऐसा ही आवश्यक मुशाइरा करना था, तो दर्या के किनारे खुली हवा में जा कर अपना शौक़ पूरा कर लेते। यह घरों के बीच में आ कर सोतों को सताना कौन सी शराफ़त है।

और फिर हम देसी लोगों के कुत्ते भी कुछ अजीब बदतमीज़ सिद्ध हुए हैं। बहुत तो इन में से ऐसे क़ौम-परस्त हैं कि पतलून कोट को देख कर भौंकने लग जाते हैं। ख़ैर यह तो एक हद तक सराहनीय भी है। इस का ज़िक्र ही जाने दीजिये। इस के अतिरिक्त एक और बात है अर्थात् हमें कई बार डाल्नियाँ ले कर साहिब लोगों के बंगलों पर जाने का सुयोग प्राप्त हुआ। ख़ुदा की क़सम उन कुत्तों में वह शाइस्तगी देखी है कि वाह-वाह करते लौट आये हैं। ज्योंही हम बंगले के दरवाजे में दाख़िल हुए, कुत्ते ने बरआमदे ही में खड़े-खड़े एक हल्की सी "भौं" कर दी और फिर मुँह बन्द कर के खड़ा हो गया। हम आगे बढ़े, तो उसने चार क़दम आगे बढ़ कर एक कोमल और स्वच्छ आवाज़ में फिर "भौं" कर दी, चौकीदारी की चौकीदारी और संगीत का संगीत। हमारे कुत्ते हैं कि न राग न सुर, न सिर न पैर, तान पर तान लगाए जाते हैं। बेताले कहीं के, न अवसर देखते हैं, न समय पहचानते हैं, गलेबाज़ी किये जाते हैं। घमण्ड इस बात पर है कि तानसेन इसी देश में तो पैदा हुआ था।

इस में संदेह नहीं कि हमारे सम्बन्ध कुत्तों से ज़रा ख़राब ही रहे हैं। परन्तु हम से सौगन्द ले लीजिये, जो ऐसे अवसर पर हमने कभी सत्याग्रह से मुंह मोड़ा हो। शायद आप इस को डींग समझें, भगवान् साक्षी है कि आज तक कभी किसी कुत्ते पर हाथ उठ ही न सका। बहुत से मित्रों ने परामर्श दिया कि रात के समय लाठी छड़ी अवश्य हाथ में रखनी चाहिये, क्योंकि यह सुरक्षा का साधन है। परन्तु हम किसी से यूँ ही मन चाहे या न चाहे, शत्रुता पैदा करना नहीं चाहते। कुत्ते के

भौंकते ही हमारी स्वाभाविक शराफ़त हम को इतनी अभिभूत कर लेती है कि आप हमें यदि उस समय देखें, तो निश्चय ही यही समझें कि हम कायर हैं। शायद उस समय यह अनुमान कर लें कि हमारा गला शुष्क हुआ जाता है। किन्तु यह ठीक है, ऐसे अवसर पर कभी मैं गाने का प्रयत्न करूँ, तो खरज (षड्ज) के सुरों के सिवा और कुछ नहीं निकलता। यदि आप ने भी हम जैसा स्वभाव पाया हो, तो आप देखेंगे कि ऐसे अवसर पर 'आयतः अलकुर्सी' (१) आप के मस्तिष्क से उतर जायगी और उस के स्थान पर आप शायद "दुआए-कुनूत" (२) पढ़ने लग जाएँ।

कई बार ऐसा भी हुआ है कि रात के दो बजे छड़ी घुमाते थियेटर से वापस आ रहे हैं और नाटक के किसी न किसी गीत की तर्ज मस्तिष्क में बिठाने का प्रयत्न कर रहे हैं। चूँकि गीत के शब्द अथवा बोल याद नहीं और अभ्यास के मैदान में भी एक दम अनाड़ी हैं, इसलिये सीटी बजा लेने पर ही संतोष कर लेते हैं, ताकि बे-सुरे भी हो गये, तो कोई यही समझेगा कि अंग्रेजी संगीत है। इतने में एक मोड़ पर से जो मुड़े, तो सामने एक बकरी बन्धी थी। ज़रा हमारी कल्पना या धारणा पर ध्यान दीजिये। आँखों ने उसे भी कुत्ता देखा। एक तो कुत्ता और फिर बकरी के डील डौल का, यूँ कहिये कि बहुत ही कुत्ता। बस हाथ पाँव फूल गये। छड़ी की गर्दिश धीमी होते-होते एक अत्यन्त नामाकूल ज़ाविये (कोण) पर हवा में कहीं ठहर गई। सीटी का संगीत भी थरथरा कर मौन हो गया, परन्तु क्या मजाल जो हमारी थूथनी की तिकोनी शक्ल में ज़रा भी अन्तर पड़ा हो, मानो एक बे-आवाज़ लय अभी तक निकल रही है। आयुर्वेद का प्रश्न है कि ऐसे अवसरों पर यदि सर्दी के मौसिम में भी पसीना आ जाय, तो कोई हानि नहीं, बाद में सूख जाता है।

---

१. 'कुरआन' की एक लम्बी आयत (वाक्य) जो बहुत शुभ और कल्याणकारी समझी जाती है।

२. ईश्वर-भक्ति की प्रार्थना।

चूंकि हम स्वभावतः ज़रा सतर्क हैं, इसलिये आज तक कुत्ते के काटने की कभी घटना नहीं हुई अर्थात् किसी कुत्ते ने आज तक हमको कभी नहीं काटा। यदि ऐसी घटना का कभी सामना होता, तो इस आपबीती के स्थान पर आज हमारी मृत्यु की कविता छप रही होती और कविता की ऐतिहासिक पंक्ति में यह प्रार्थना की होती।

"कि इस कुत्ते की मिट्टी से भी कुत्ता-घास पैदा हो।"

परन्तु —

कहूँ किस से मैं कि क्या सगि रह(१) बुरी बला है।
मुझे क्या बुरा था मारना अगर एक बार होना।

जब तक इस संसार में कुत्ते मौजूद हैं और भौंकने पर डटे हैं, समझ लीजिये कि हम क़ब्र में पांव लटकाये बैठे हैं। फिर इन कुत्तों के भौंकने के नियम भी तो कुछ निराले हैं, अर्थात् एक तो यह संक्रामक रोग है और फिर बच्चों, बूढ़ों सभी को लगा हुआ है। यदि कोई भारी भरकम गद्दी कुत्ता कभी-कभी अपने गर्व और दब-दबे को अक्षुण्ण रखने के लिए भौंक ले, तो हम भी मरते जीते कह दें कि भई भौंके (यद्यपि ऐसे समय में उस को जंजीर से बन्धा होना चाहिये)। परन्तु यह कम्बख्त दो-दो तीन-तीन दिन के दो-दो तीन-तीन तोले के पिल्ले भी भौंकने से बाज़ नहीं आते। बारीक आवाज, ज़रा सा फेफड़ा, इस पर भी इतना ज़ोर लगा कर भौंकते हैं कि आवाज़ का कम्पन दुम तक पहुँचता है और फिर भौंकते हैं, चलती मोटर के सामने आ कर, मानो रोक ही तो लेंगे। अब यदि यह दास मोटर चला रहा हो, तो हाथ काम करने से सर्वथा इन्कार कर दे, परन्तु हर कोई यूं उन की प्राण-रक्षा थोड़ा ही करेगा।

कुत्तों के भौंकने पर मुझे सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि उन की आवाज़ सोचने की समस्त शक्तियों को बेकार कर देती है। विशेषतः

१. रास्ते का कुत्ता।

जब किसी दुकान के तख्ते के नीचे से उन की एक पूरी गुप्त सभा बाहर सड़क पर आ कर प्रचार का काम आरम्भ कर दे, तो आप ही कहिये, होश ठिकाने रह सकते हैं ? प्रत्येक ओर बारी-बारी से ध्यान देना पड़ता है । कुछ उन का शोर कुछ हमारी प्रोटेस्ट-ध्वनि (होठों के भीतर ही भीतर), बेढंगी गति और शिथिलता (गति उन की, शिथिलता हमारी)। इस हंगामे और हड़बोंग में मस्तिष्क भला खाक काम कर सकता है ? यद्यपि मुझे नहीं मालूम कि यदि ऐसे अवसर पर मस्तिष्क काम करे भी, तो क्या तीर मारेगा ? खैर कुछ भी हो, कुत्तों का यह परले दर्जे का अन्याय मेरे निकट सदा घृणा के योग्य रहा है। यदि उन का एक प्रतिनिधि शराफ़त से हम से आकर कह दे कि जनाबे-आली, सड़क बन्द है, तो खुदा की क़सम हम बिना चूं व चरा किये वापस लौट जाएँ। और यह भी कोई नई बात नहीं, हम ने कुत्तों के आवेदन पर कई रातें सड़कें नापने में व्यतीत कर दी हैं । परन्तु पूरी मजलिस का यूं संयुक्त और एकता-पूर्ण सीना-ज़ोरी करना एक निकृष्ट चेष्टा है। (आदरणीय पाठकों की सेवा में निवेदन है कि यदि उन का कोई प्रिय व आदरणीय कुत्ता कमरे में मौजूद हो, तो यह लेख ऊंची आवाज़ से न पढ़ा जाय । मेरा उद्देश्य किसी का दिल दुखाना नहीं ।)

ईश्वर ने प्रत्येक जाति में पुण्यशील व्यक्ति भी पैदा किये हैं । कुत्ते इस व्यापक नियम से मुक्त नहीं । आप ने दयालु करुणामय कुत्ता भी अवश्य देखा होगा । प्रायः उस के शरीर पर तपस्या के प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं । जब चलता है, तो इस दीन और विनीत भाव से कि मानो पाप कर्म की अनुभूति आँख नहीं उठाने देती । पूंछ प्रायः पेट के साथ लगी होती है । सड़क के बीचों-बीच सोच-विचार के लिए लेट जाता है और आँखें बन्द कर लेता है । मुखाकृति सर्वथा दार्शनिक की सी और वंश-लड़ी 'देव जांस कल्बी' से मिलती है । किसी गाड़ी वाले ने उत्तरोत्तर बिगुल बजाया, गाड़ी के विभिन्न भागों को खटखटाया, लोगों से कहलवाया, स्वयं दस बारह बार आवाजें दीं, तो आप ने सिर को

वहीं भूमि पर रखे, लाल मस्त आँखों को खोला। परिस्थिति को एक नजर देखा और फिर आँखें बन्द कर लीं। किसी ने एक चाबुक लगाया, तो अत्यन्त बेफ़िक्री के साथ वहाँ से उठ कर एक गज परे जा लेटे और विचारों के क्रम को, जहाँ से वह टूट गया था, वहीं से फिर आरम्भ कर दिया। किसी बाइसिकल वाले ने घण्टी बजाई तो लेटे-लेटे ही समझ गये कि बाइसिकल है। ऐसी छिछोरी चीजों के लिए वह मार्ग छोड़ देना फ़कीरों की शान के विरुद्ध समझते हैं।

रात के समय यही कुत्ता अपनी शुष्क पतली सी पूँछ को यथा संभव सड़क पर फैला कर रखता है। इस से केवल भगवान के महान् मनीषियों की परीक्षा उद्दिष्ट होती है। जहाँ आप ने भूल से उस पर पाँव रख दिया, उन्होंने क्रोध भरे लहजे में आप से पूछ ताछ आरम्भ कर दी, "बच्चा! फ़क़ीरों को छेड़ता है, दिखाई नहीं देता, हम साधु लोग यहाँ बैठे हैं"। बस उस साधु के अभिशाप से उसी समय कम्पन आरम्भ हो जाता है। बाद में कई रातों तक यही स्वप्न दिखाई देते रहते हैं कि असंख्य कुत्ते टांगों से लिपटे हुए हैं और जाने नहीं देते। आंख खुलती है, तो पाँव चारपाई की अदवान में फंसे होते हैं।

यदि भगवान मुझे कुछ समय के लिये उच्च प्रकार के भौंकने और काटने की शक्ति प्रदान करें, तो प्रतिशोध का उन्माद मेरे पास प्रचुर परिमाण में है। धीरे-धीरे सब कुत्ते इलाज के लिये कसौली पहुँच जाएँ। एक शिअ्र है—

उर्फ़ी(१) तो मेन्देश जग़ोग़ाइ-रक़ीबाँ।
आवाज़ि-सगाँ कम न कुनद रिज़्क़-गदारा॥

अर्थात्—ऐ उर्फ़ी! तू शत्रुओं या प्रतिद्वन्द्वियों के हुल्लड़ से न डर क्योंकि जिस प्रकार कुत्तों का भौंकना फ़क़ीरों की रोज़ी अथवा भिक्षान्न को कम नहीं कर सकता, उसी प्रकार शत्रुओं का विरोध तेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। —प्रभाकर

(१) 'उर्फ़ी'—फ़ारसी के एक विख्यात शाइर का उपनाम

यही वह अस्वाभाविक शाइरी है जो एशिया के लिये लज्जा का कारण है। अंग्रेजी में एक कहावत है कि "भौंकते हुए कुत्ते काटा नहीं करते।" यह उचित या सत्य ही सही, परन्तु कौन जानता है कि एक भौंकता हुआ कुत्ता कब भौंकना बन्द कर दे और काटना आरम्भ कर दे।

—ए०एस० बुख़ारी 'पतरस'

क़िस्सा पहले दरवेश का

पहले दरवेश ने दूसरे दरवेश की डाढी पर हाथ फेरते हुए सिगरेट सुलगाया और अपने क़िस्से का आरंभ 'ग़ालिब' के इस शिअ्र से किया—

अच्छे ईसा हो मरीज़ों का ख़याल अच्छा है।
वह अलग बान्ध के रक्खा है जो माल अच्छा है(१)।

तीनों दरवेश इस शिअ्र पर वाहवाह करते हुए उठे, और पहले दर[वे]श का सिर धुनने लगे। पहले दरवेश को पगड़ी खुल गई। उसने पगड़ी बान्धते हुए आंखों में आंसू ला कर कहा—

"भाइयो इस दास अनुदास की कहानी अत्यन्त दुःख भरी है। इतनी

---

१. लेखक ने इसे "ग़ालिब" का शिअ्र कह कर हास्यरस पैदा करने की एक नई राह ढूण्ड निकाली है। वास्तव में यह ग़ालिब का शिअ्र नहीं है, प्रत्युत 'ग़ालिब' की ज़मीन पर कहा हुआ लेखक का अपना शिअ्र है। लेकिन जनाब क़ुरबानी देखिये लेखक महोदय की—उसने व्यंग्य के लिये अपनी इस विचित्र अमूल्य निधि को 'ग़ालिब' के नाम लिख दिया है, अन्यथा 'ग़ालिब' बेचारे ने तो यूं कहा था—

बोसा देते नहीं और दिल प है हर लहज़ा निगाह।
जी में कहते हैं कि मुफ़्त आय तो माल अच्छा है॥
उनके देखे से जो आ जाती है रौनक़ मुंह पर।
वे समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है॥

—प्रभाकर

दुःख भरी कि रिसाला" अब्दुल लतीफ"१ के सम्पादक ने इसे केवल इसलिये छापने से इन्कार कर दिया था कि इसे पढ़ कर कातिब के आँसू नहीं थमते थे। मेरी कहानी एक ऐसे शहर के रेलवे स्टेशन से आरंभ होती है, जो हम से थोड़ी दूर हमारे इर्द-गिर्द फैला हुआ है। मैं पहली बार उस शहर में दाखिल हुआ तो शरीफ आदमियों के लिबास में सुशोभित था, अतः स्टेशन पर ही पकड़ लिया गया और जेलखाने में डाल दिया गया। दूसरी बार गिरह-कट के भेस में प्रकट हुआ, तो रेलवे स्टेशन पर ही मेरी खूब आव-भगत और जाव-भगत हुई। लोगों ने श्रद्धा के आवेश में मेरे गले में इतने हार डाले कि मेरा चेहरा उनमें छिप गया और जब मेरा चेहरा छिप गया, तो एक व्यक्ति ने श्रद्धा के भावावेश से विवश होकर मेरी दोनों जेबें काटीं और उनमें से होटलों के बिल निकाल कर ले गया। एक और व्यक्ति भीड़ को चीरता हुआ मेरी ओर बढ़ा। निकट आकर उसने अपने रूमाल से मेरी दाहिनी मूछें झाड़ दीं और उस पर एक बोसा (चुम्बन) दिया और जेब से एक समोसा निकाल कर खाने लगा।

मैंने पूछा—

"भाई यह बोसा और समोसा क्या हुआ ?"

इस पर वह 'मर्दे-बद-लगाम लेकिन खुश-कलाम'२ यूँ बोला—वही जो गम्जा३ और गुरूर-गम्जा४ होता है।"

---

१. यह नाम वास्तव में किसी रिसाले या पत्रिका का नहीं, किसी पुरुष का हो सकता है, परन्तु लेखक ने इसे रिसाले के नाम के तौर पर प्रयोग करके एक सुन्दर व्यंग पैदा किया है, विशेषतः इसलिये भी कि जब लाहौर (पाकिस्तान) के एक विख्यात साहित्यिक रिसाले (पत्र) का नाम "अदबि-लतीफ़" है। —प्रभाकर

२. मुँह फट परन्तु प्रियवाणी वाला व्यक्ति।

३. प्रिया ललना का मधुर कटाक्ष, हाव-भाव।

४. धोखा और फरेब

मैं दिमाग़ ही दिमाग़ में उसकी अक्ल पर आश्चर्य-चकित रह गया। इतने में लोग मुझे धकेलते हुए स्टेशन से बाहर ले आये। बाहर आ कर उनमें से प्रत्येक ने मुझ से बारी-बारी हाथ मिलाया और मेरे गले से अपना-अपना हार उतार कर चलते बने।

हठात् एक तांगा मेरे निकट से गुज़रा, जिसे देख कर मेरे कन्धों के तोते उड़ गये, इसलिए कि उसकी पिछली सीट पर एक लम्बे मुंह वाला घोड़ा हाजियों वाला पीला रूमाल सिर पर बान्धे ऐनक लगाए अखबार पढ़ रहा था। मैं हैरान हो रहा था कि या इलाही मिट न जाय दर्दे दिल, यह मैं कौन से शहर में आ गया हूं!

फिर तो मेरे भाइयो! मैं वहां से एक बाज़ार की ओर चल पड़ा। एक स्थान पर मुझे कुछ भीड़ दिखाई दी। पास जाकर क्या देखता हूं कि एक कुत्ता भूमि पर अर्धमृत सी अवस्था में लेटा हुआ है और उसकी टांग में से रक्त बह रहा है। पता करने पर मालूम हुआ कि उसे एक आदमी ने काट खाया है। निकट तीन-चार कुत्ते खड़े थे। एक कुत्ते ने कान में उंगली फ़ेरते हुए दूसरे कुत्ते से कहा—

"इसे तुरन्त टीके लगवाने चाहियें।" इतना सुन कर चुपके से मैं एक ओर खिसक गया, क्योंकि मेरे आस-पास बहुत से आदमी खड़े थे।

जिस बाज़ार से मैं गुज़र रहा था, वह काफ़ी बारौनक़ था। दोनों ओर की दुकानें सुन्दर और सजी धजी हुई थीं। चूंकि रमज़ान शरीफ़ (रोज़ों) का महीना था, इसलिये लोग दलों के दल रेस्टॉरेण्टों में घुसे चले जा रहे थे। एक बहुत बड़े रेस्टॉरेण्ट के दरवाज़े पर यह छोटा सा बोर्ड लटक रहा था, जिस पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था—

"यह होटल 'रमज़ान शरीफ' (रोज़ों) के समादार में बन्द है।"

नोट—खाना खाने के लिये पिछली गली से तशरीफ़ लाइये।

मैं अभी बोर्ड पढ़ ही रहा था कि निकटवर्ती दुकान से दो नंगधड़ंग आदमी भागते हुए निकले और सामने वाली गली में गुम हो गये। मैंने ध्यान से देखा, तो दुकान के माथे पर लाल अक्षरों में लिखा था—

"यहाँ भागते चोरों की लंगोटियाँ बिकती हैं।"

मैं वहाँ से भागने ही लगा था कि अकस्मात् मुझे अपनी लंगोटी का ख्याल आ गया और मैं पहले से भी अधिक मन्द गति से चलने लगा। कुछ दूर चलने पर मैंने देखा कि दो व्यक्ति किसी बात पर बड़ी गर्मा-गर्मी से झगड़ा कर रहे थे। एक व्यक्ति दूसरे से कहने लगा—

"मैं तुम्हारी ईंट से ईंट बजा दूंगा।"

दूसरे व्यक्ति ने बड़ी लापरवाही से कहा—

"देख लूंगा जब तुम ईंट से ईंटें बजाओगे।"

इस पर पहले व्यक्ति ने आगे बढ़ कर सड़क पर से दो ईंटें उठाईं और उन्हें हाथों में लेकर धीरे-धीरे बजाने लगा। इसके बाद उसने अपने हाथ झाड़े और एक ओर चल पड़ा। बस फिर क्या था, दूसरे लोग हाथ झाड़ कर उसके पीछे पड़ गये। इसी भीड़ में हठात् एक लड़का वयोवृद्ध आदमी को कान से पकड़ कर खींचता हुआ बाहर निकाल लाया और आँखें लाल करते हुए गरजा

"अब्बा जान(१)! मैंने आपसे कई बार कहा है कि दोपहर के समय घर से बाहर न निकला करें, परन्तु आप सुनी अनसुनी कर देते हैं।"

उस वयोवृद्ध आदमी ने मुंह लटका कर और कांपते हुए कहा। बेटा जान! मैं तो जमींदार अखबार लेने आया था।"

लड़के ने कान छोड़ कर अपनी कमीज का कालर ठीक किया और कहा—

"अब सीधा घर जाइये और स्कूल का सबक याद कीजिये।"

"माई गुड नेस! कैसे वालिदैन (माता-पिता) से पाला पड़ा है?"

मेरे समरूप और मेरे समबुद्धि भाइयो! मैं भाइयों की दुकान (२)

---

(१) पिता जी।

(२) लाहौर के शाही मुहल्ले में इत्र और सुगन्धित तेलों की विख्यात दुकान हुआ करती थी, जिसका नाम था "भाइयों की दुकान।"

की क़सम खा कर कहता हूँ कि मैं आश्चर्य-चकित हो कर रह गया और वहाँ से जल्दी-जल्दी भाग निकला। आगे बड़े चौक के मध्य में एक सुन्दर फव्वारा लगा था, जिसमें से पानी जल बिन मीन की भाँति तड़प-तड़प कर बाहर उबल रहा था। फ़व्वारे के नीचे एक पक्षी बैठा था, जो अपने पंखो पर पानी नहीं पड़ने देता था। उस के ऊपर एक और पक्षी वृक्ष की टहनी पर बैठा था। तराज़ू उस के हाथ में था और वह पलड़ों में पंख डाले उन्हें तोल रहा था। फव्वारे की दाईं ओर मैं ने हरी घास पर एक बड़े ही प्यारे और निर्दोष-वदन गुड्डे से बच्चे को देखा, जो छोटे-छोटे खिलौनों से खेल रहा था और अपने आप हँस रहा था। बच्चा मुझे इतना प्यारा लगा कि मैं, जो कभी बच्चों से प्यार नहीं करता, उसके पास जा कर बैठ गया। मैंने बड़े प्यार से उस की ठोड़ी को उंगली से स्पर्श करते हुए कहा—

"हे लो बेबी। हे लो स्वीट बेबी और हे लो कड्डी! बिस्कुट खाओगे ?"

बच्चे ने एकाएक खिलौने हाथ से रख दिये। नीकर की जेब से लाईब्रेरी फ्रेम वाली ऐनक निकाल कर आँखों पर लगाई और मुझे घूरते हुए भारी आवाज़ में बोला—

"मिस्टर! मुझ से खुल जाने का प्रयत्न न करो।"

ऐ अल्लाह के दरवेशो! इतना सुनना था कि मेरी पगड़ी उछल कर मुझ से दूर जा गिरी। जब मैं वहाँ से भागने लगा, तो बच्चे ने ठण्डी आह भर कर यह शिअ्र पढ़ा—

खिलौने दे के बहलाया गया हूँ,
मैं खुद लाया नहीं, आया गया हूँ।

मेरी सुधि अभी ठिकाने पर नहीं आई थी। मैं उसे ठिकाने पर लाने के लिये एक बैंच पर जा कर बैठ गया। जब मेरी सुधि पूर्णतः ठिकाने पर आ गई, तो क्या देखता हूं कि मेरे पास ही पगड़ी-धारी एक बूढ़े बुज़ुर्ग विराजमान हैं और कुछ पढ़ रहे हैं। उनका मुँह किताब से

ढाँप रखा था । मैं ने सोचा कि चलो इन से दो बातें ही कर लें । मैंने गला साफ़ करते हुए कहा—

"क्यों साहिब आज मौसम कैसा है ?"

दूसरी ओर से कोई उत्तर नहीं मिला । मैं ने कान साफ़ करते हुए अपना प्रश्न फिर दुहराया । उत्तर में पहले की तरह नीरवता छाई रही । मेरे तीसरी बार पूछने पर वे बुज़ुर्ग किताब परे हटाकर मुझे क्रोध की दृष्टि से घूरने लगे । उन्हें देख कर मेरे बैंच के पाँव तले से ज़मीन निकल गई । क्यों कि वे बुज़ुर्ग मुंह में चूसनी लिये जल्दी-जल्दी शहद चूस रहे थे । मैं वहाँ से सिर पर जूते रख कर भागा और शहर की सबसे बड़ी सड़क पर आ कर साँस लिया । परन्तु यहाँ आकर अजीब ही तमाशा देखा । चौक में ट्रैफ़िक का सिपाही अनेक साइकल-सवारों के मध्य खड़ा उनका चालान कर रहा था । यद्यपि धूप काफ़ी तेज़ी से प्रकाशित थी, फिर भी उन लोगों के केवल इस लिए चालान हो रहा था कि वे प्रातः के समय बिना बत्ती के साइकल चला रहे थे । एक कोचवान मेरी पगड़ी देख कर तांगा मेरे पास ला कर बोला—

"दाता के दरबार चलिएगा जनाब ?"

मेरे इन्कार पर कोचवान ने आनुरोध करते हुए कहा—

"सरकार पलक झपकने में पहुंचा दूँगा । पन्द्रह हार्स पावर का घोड़ा है ।"

मैं ने डर कर घोड़े की तरफ देखा । घोड़े ने गर्दन घुमा कर मेरी ओर देखा और नाक चढ़ा कर बोला—

"झूठ बकता है । मैं केवल एक हार्स पावर का घोड़ा हूं ।"

ज्यों-ज्यों शाम हो रही थी, मेरे दरवेश भाइयो ! मेरे मन को यह चिंता ग्रस्त कर रही थी कि रात कहां व्यतीत की जाय ? घूमते-घूमते मैं शहर की चार दीवारी में आ गया । यहाँ एक स्थान पर क़व्वाली हो रही थी । तबले बज रहे थे और क़व्वाल झूम-झूम कर यह दोहा बार-बार पढ़ रहे थे—

इक माजरा सुनाता हूँ मैं हुस्नो-इश्क़ का,
'लैली' का एक आशिक़्-दीवाना क़ैस था।
बादि-फ़ना१ थे दोनों के मर्क़द२ जुदा जुदा,
लेकिन वे दोनों क़ब्रों से आती थी यह सदा३।
तेरे मुखड़े ते काला काला तिल वे,
वे मुंडिया स्याल-कोटिया।

पहले क़व्वाल उठे, तो एक और क़व्वाल साहिब पधारे, जो टेलर मास्टर थे। उन्होंने बैठते ही गाना आरम्भ कर दिया—

"मैं ने लाखों के कोट सिये —
सितमगर तेरे लिये।"

इस पहले ही मिस्रे४ से लोग इस क़दर प्रभावित हुए कि उन्होंने उठ कर नाचना आरम्भ कर दिया, और अपने-अपने कोट फाड़ डाले। दर्ज़ी क़व्वाल के चेले आगे बढ़े और आन की आन में सारे कोट संग्रह कर के ले गये। मैं ने अपने कोट के बटन बंद किये और आगे चल पड़ा।

ऐ मेरे प्यारे चौथे दरवेश! इस से पहले कि मैं कहानी का अंतिम भाग कह कर सुनाऊं, तू अपनी वास्कट के भीतरी जेब में अपना हाथ डाल कर बगुले का सिगरेट मुझे पिला ताकि मेरे अन्तःकरण की पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ उस से आनन्द-विभोर हों।"

इस पर चौथे दरवेश ने रोनी सूरत बनाते हुए बगुले का सिगरेट निकाला और पहले दरवेश को दिया।

बगुले का सिगरेट का कश (सूटा) खींच कर पहला दरवेश एक टाँग पर खड़ा हो गया और अपनी कहानी सुनाने लगा—

भाइयो! सायं हो चुकी थी। मैं ने कहीं से सुन रखा था कि इस शहर में सायं के समय संभ्रांत लोग दस्तरख़्वान पर खाना चुन कर

---

१. मौत के बाद २. क़ब्र ३. आवाज़ ४. आधा शिअ्र

मेहमानों की खोज में गलियों में चक्कर लगाया करते हैं। अस्तु इसी आशा में मैं भी गलियों में घूमने लगा। एक गली का मोड़-मुड़ते हुए अकस्मात् किसी ने मेरे मुंह में कपड़ा ठूंसा और दो आदमी मुझे उठा कर किसी रहस्यमय होटल में ले गये। मुझे कुर्सी पर बिठला कर एक ने पिस्तौल निकाल कर बाहर रख दिया और बाकी दोनों आदमी कुर्सियाँ खींच कर मेज़ के गिर्द बैठ गये। एक ने कहा—

"हमें खाना खिलाओ या हमारी गोलियाँ ठण्डी करो।"

मैं सन्नाटे में आ गया। उन्होंने इस बीच में भाँति-भाँति के खानों का आर्डर दिया, और खा पी कर बिल मेरे हवाले करके चलते बने। मैं ने उठते हुए बिल मैनेजर के हवाले कर दिया और होटल के मैनेजर ने मुझे पुलिस के हवाले कर दिया और पुलिस मुझे हवालात में ले गई। संयोग की बात देखिये कि हठात् मुझे ख़याल आया कि मेरे 'कुल्लाह'१ में एक कीमती पत्थर जड़ा हुआ है। उसे बेच कर मैं ने जौहरी से साढ़े ग्यारह रुपये प्राप्त किये। पाँच रुपये हवालात वाले दारोगे को दिये, पाँच रुपये में उन लोगों का बिल अदा किया, जो मेहमान-नवाज (अतिथि सेवी) की खोज में रात को गलियों में घूमा करते हैं और बाकी पैसे जेब में डाल कर "चाक टी हाउस' में जा बैठा और चाय पीने लगा।

मेरे बिल्कुल सामने एक लम्बी नाक वाला आदमी प्लेट में बर्फ डाले उस के साथ रोटी खा रहा था। एक और आदमी आईस-क्रीम में खीरे की फालियाँ डाल कर उन्हें अपने गले के नीचे उतार रहा था। बची हुई आईस क्रीम उसने बटुए में डाली। बूट के तस्मे खोल कर रुपये का नोट निकाला, बिल पर हस्ताक्षर किये और होटल से बाहर निकल गया। एक नौजवान लड़का चाय की प्याली सामने रखे

---

१. वह टोपी सी जिसे सिर पर पहन कर ऊपर पगड़ी बाँधी जाती है।

ज़ार-ज़ार रो रहा था और बार-बार ऐशट्रे उठा कर उस में आँसुओं की बूँदें गिरा रहा था। सिगरेट अभी समाप्त नहीं हुआ था कि उस ने उसे चाय के प्याले में डाल कर बुझाया। इधर-उधर देख कर ऐशट्रे जेब में डाल कर होटल से बाहर निकल गया। जहाँ वह बैठा था, उसके ठीक ऊपर लिखा था—

"कृपया सिगरेट प्यालों में मत बुझाइये और यदि आप ऐसा करने पर विवश हैं, तो बैरे को कहिये, चाय ऐशट्रे में लाय।"—मैनेजर।

मैं उठने ही वाला था कि दो गंजे सिरों वाले बुक़रात १ टाइप के आदमी अन्दर आये। बड़ी सतर्कता से मेज़ के गिर्द बैठ कर उन्होंने एक प्लेट बकरी के मग्ज़ का आर्डर दिया और जब मग्ज़ आया, तो बड़ी ख़ामोशी से मग्ज़ खाने लगे। इस होटल से बाहर निकल कर मैं ने सोचा कहाँ जाऊं? किधर जाऊं? दो साहित्य-कार मेरे पास से गाते हुए गुज़रे—

मन का पंछी बोल उठा है
बोल सुजन तेरी जेब में क्या है?
जेब में क्या है?
मेरी जेब की बात न पूछो।
हाय कोई पैसा नहीं······

अब मेरे सामने पहुँचने की कोई उद्दिष्ट मंजिल न थी। अतः मैं ने यूँही बिना किसी उद्देश्य के घूमना आरम्भ कर दिया। मिस्री शाह के सामने बाग में मझे दो पुलिस के सिपाहियों ने रोक लिया।

"कौन हो तुम?"

मैं ने कहा—"पहला दरवेश!"

मेरा इतना ही उत्तर सुन कर वे मुझे पकड़ कर थाने ले गये। और अवारा-गर्दी के अपराध में हवालात के अन्दर बंद कर दिया गया।

---

१. यूनान का एक विख्यात दार्शनिक।

उस हवालात में मेरी भेंट एक ऐसे व्यक्ति से हुई, जो हत्या के अपराध में वहां रात भर के लिये रखा गया था। उस के विरुद्ध अभियोग यह था कि उस ने एक व्यक्ति से नेकी की थी और फिर उस व्यक्ति को दर्या में डाल दिया था।

रात भर मैं इस आदमी से डर कर एक कोने में दुबका बैठा रहा और वह आदमी चीख़-चीख़ कर पुकारता रहा—

"नेकी कर दर्या में डाल।"

ख़ुदा-ख़ुदा करके सुब्ह हुई और पुलिस वालों ने मुझे छोड़ दिया। बाहर निकल कर क्या देखता हूं कि मेरे पीछे पूंछ निकल आई है। मैंने जल्दी से उसे दबाया और स्टेशन की ओर भाग उठा। कहीं गाना हो रहा था—

मेरी गठरी को लागा चोर
मुसाफ़िर भाग ज़रा.........

और ऐ मेरे दरवेश भाइयो! अब मैंने तकिये (१) में आकर सांस लिया और इन्शाइ-अल्लाह् (भगवान की इच्छा से) इसी जगह सांस छोड़ूंगा।"

यह क़िस्सा सुन कर दो दरवेश तो एक दूसरे का मुंह तकने लगे और तीसरे दरवेश ने उछल कर कहा—

"भाई ख़ुदा के लिये मुझे यह क़िस्सा लिख दे। मैं नया-नया अख़बार का एडिटर हूं।"

होना निकट समाप्ति के पहले दरवेश के क़िस्सा का।

—ए० हमीद

---

१. दरवेशों और मलंगों का डेरा।

इशरत ज़मानी बेगम

आप सच मानिये कि किसी की बुराई करने पर मेरी लेखनी नहीं चलती। परन्तु आख़िर धैर्य की भी सीमा होती है। इशरत ज़मानी बेगम और उनकी सास के झगड़ों से तंग आने के बाद यह लेख लिख रहा हूँ। ख़ुदा मुआफ़[१] करे। उन दोनों से मुआफ़ी (क्षमा) नहीं माँगता क्योंकि वे क़यामत तक मुझको मुआफ़ नहीं करेंगी।

इशरत ज़मानी आँख, नाक, से ठीक सुदर्शना, रूप-आकृति की अच्छी, बड़े घर की बेटी, पढ़ी लिखी, सभ्य सुशीला, आँखों में लिहाज़, निगाह में शर्म, बड़ों को बड़ा और छोटों को छोटा समझने वाली थी, परन्तु-बावुजूद इस के यह ग़ज़ब था कि छोटे बड़े नौकर चाकर सास सुसरे, देवरानियाँ, जिठानियां, यहाँ तक कि मियां (पति) भी उस से ख़ुश न थे। था क्या! बस यही कि जो बात जिस समय पर करनी चाहिये वह नहीं करती थी। यह नहीं कि वह किसी बिगाड़ के लिए ऐसा करती हो क्योंकि लड़ने झगड़ने से वह स्वयं कोसों दूर भागती थी, मुसीबत यह थी कि वह जिस काम के पीछे पड़ जाती थी, उस को पूरा

१, बहुत से लोग इसे "माफ़" लिखते हैं, परन्तु यूँ लिखना सर्वथा ग़लत और अशुद्ध उच्चारण ही प्रस्तुत नहीं करता, प्रत्युत देवनागरी लिपि के गौरव से अन्याय भी करता है। अतः 'मुआफ़' को 'माफ़' न लिख सकने के लिये पाठकों से क्षमा माँगता हूँ, 'माफ़' लिखने वालों से नहीं माँगता, क्योंकि वे प्रलय तक मुझको मुआफ़ नहीं करेंगे। —प्रभाकर

किये बिना नहीं छोड़ती थी, चाहे इधर की दुनिया उधर क्यों न हो जाय, और उस से आवश्यक काम नष्ट-भ्रष्ट क्यों न हो जाएँ।

लो देख लो ना। मियाँ दफ्तर जाने को तैयार हैं। शेरवानी, टोपी पहन कर दालान में खड़े हैं। मोटर दरवाजे पर आ गई है, परन्तु पानों की डिबिया कोठे पर से किसी तरह नहीं आती। बेगम साहिबा बैठी कुछ पढ़ रही हैं। यह नहीं समझतीं कि इस समय पान बनाने आवश्यक हैं या पढ़ना? मियाँ ने आवाज़ दी—"बेगम! मुझे देर हो रही है, पान बनाओ।" उन्होंने पढ़ते-पढ़ते ही उत्तर दिया—"ठहरो अभी आई!" जब और देर हुई, तो सास ने पुकारा—"ऐ है, दुलहन, आखिर यह निगोड़ा कहाँ का पढ़ना है कि मियाँ दफ्तर जाने को खड़े हैं और तुम ज़रा खयाल नहीं करतीं।"

उन्होंने फिर वही उत्तर दिया—"जी आई।" अन्त में "जी, अभी आई" का सिलसिला यहाँ तक खींचा कि मियाँ तंग आ कर पानों की डिबिया लिये बिना दफ्तर चल दिये। माँ ने कहा भी कि 'लाओ मैं पान बना दूँ।' परन्तु भला वे कब मानने वाले थे। "जी रहने दीजिये, मैं पान खाना ही छोड़ देता हूँ," कहकर भृकुटि पर बल डाले बाहर निकल गये। यह ठीक है कि श्री इस्रत ने पढ़ने से अवकाश पाकर पान की डिबिया दफ्तर भेजी, परन्तु यह जैसी गई थी, वैसी की वैसी वापस आ गई। अब आप स्वयं ही सोचिये कि यह घर बिगड़ने की बातें हैं या नहीं। एक तो यह दूसरे खुदा बचाये हम लोगों को आदतें ऐसी पड़ गई हैं कि ज़रा-ज़रा सी बात को दिल में लिये बैठे रहते हैं और फिर इस पर अपने मन से वे हाशिये चढ़ाते हैं कि ईश्वर ही बचाए। इसी कारण कई बार यहाँ तक खिचती है कि आखिर टूट जाती है।

देखा जाय, तो हम लोगों में सब से अधिक झगड़े का झोंपड़ा घर का प्रबन्ध है। सास समझती है कि मैं घर की बड़ी हूँ। सारा प्रबंध मेरे हाथ में रहना चाहिये। बहू समझती है कि गवर्नमेंट पुरानी हो गई। अब मुझे यहाँ का प्रेसीडेंट होना चाहिये। सास अपने इजार-

बन्द से कुंजियों का गुच्छा नहीं खोलती। बहू असहयोग से काम लेकर सर्वथा अलग सी और खिंची खिंची सी रहती है। यदि सास ने किसी काम को कहा भी, तो उन्होंने 'ऊँह' कर के टाल दिया। सास नहाने जा रही हैं। अनाज देने को देर हो रही है। उन्होंने इज़ार-बन्दसे कुंजियों का गुच्छा खोल कर बहू की ओर फेंका और कहा, "देखना दुल्हन! ज़रा करीमन को अनाज दे देना, परन्तु हर चीज़, स्वयं तोल कर देना नहीं तो यह शैतानी डंडी मार कर ड्योढ़ा अनाज निकाल लेगी।

बहू ने कहा, "आप ही दे दें तो अच्छा है। पहली बात यह कि मुझे मालूम नहीं, कि कौन सी चीज़ कितनी दी जाती है, दूसरे मैं इस समय बिलाउज सी रही हूँ।" फिर क्या था सास साहिबा बिगड़ ही गईं और कहने लगीं—

"ओ हो, और नन्ही बन जाओ। माशा अल्लाह वर्ष भर से घर में हो। तुम को यह भी ख़बर नहीं कि कितना-कितना अनाज दिया जाता है। मेरा क्या है न दो; स्वयं ही भुखी रहोगी और जो दफ्तर को खाना जाने में देर हुई, तो देखना वे आप के मियाँ आ कर क्या कोलाहल मचाते हैं।"

आप जानते है कि आजकल की लड़कियों के मुँह पर कुछ ताला तो होता ही नहीं। उन्होंने भी जरा चूभते हुए शब्दों में कहा, "तो आख़िर मुझे मालूम होता तो क्योंकर मालूम होता। कभी आज तक मैंने अनाज दिया है? कभी कुंजियाँ आप के इज़ारबन्द से खुली हैं? अनाज तो आप दें। कपड़ा सेंतें तो आप सेंतें। जिस चीज़ को देखो ताला है और उस की कुंजी आप के पास है। अब रहे वे, तो उनको स्वयं ही मालूम है कि मैं इस घर में मेहमानों की तरह रहती हूं। समय पर खाना नहीं गया, तो मैं उस की ज़िम्मादार क्यों होने लगी। वे होंगे, जिनके हाथ में अनाज और रसोईघर का प्रबन्ध है।"

बी इशरत ज़मानी की सास में इतना साहस तो था नहीं कि वे बात को बढ़ाएँ, क्योंकि जानती थीं कि यदि सख्ती की और यह मायके

चली गई, तो बेटे को क्या उत्तर दूँगी। परन्तु इसके साथ ही वे अपनी बात को नीचा करना भी नहीं चाहती थीं। इसलिये उन्होंने यह किया कि कुंजियाँ बहू के सामने फेंक कर हमाम में चली गईं। बहू भी आख़िर बड़े घराने की बेटी थीं। यद्यपि स्वभाव अच्छा पाया था, परन्तु रोज़-रोज़ की दाँताकिलकिल से देवता भी दानव हो जाता है। इसलिये वे भी खिंच गईं, कुंजियाँ जहाँ पड़ी थीं वहीं पड़ी रहीं और ये बैठी ब्लाउज़ सीती रहीं। ब्लाउज़ समाप्त हो गया, तो पाजामे काटने बैठ गईं। परिणाम यह हुआ कि बारह बज गये और चूल्हे उसी तरह ठण्डे पड़े रहे। भला करीमन इस सास बहू के मुआमले में क्यों हस्तक्षेप करतीं। वे इस सिद्धांत को भली प्रकार जानती थीं कि घर में लड़ाई लड़वाओ और शासन करो'। उन्होंने बी इशरत ज़मानी से एक आध बार झूठे मुँह आ कर पूछा भी कि बहू आज खाना नहीं पकेगा। परन्तु जब इधर से कोई उत्तर नहीं मिला, तो ये भी मर्दाना में जाकर मिस्टर फ़ैज़ो के पास बैठ कर गप्पें उड़ाने लगीं।

सारांश, खुदा-खुदा करके बड़ी बी हमाम से निकलीं। बड़बड़ाती हुई दालान में आईं। बहू के सामने से कुंजियाँ उठाईं, कोठरी का ताला खोल अनाज निकाल कर बी करीमन के हवाले किया और इस प्रकार कोई तीन बजे खाना तैयार होकर दफ्तर गया। भला तीन बजे कोई खाना खाने का समय है। जैसा गया था वैसा का वैसा ही वापस आ गया। इसके पश्चात समझ लीजिये कि दफ्तर से आने के बाद घर वाले मियां ने क्या कुछ ऊधम न मचाया होगा। सास ने सारा दोष बहू के सिर पर थोपा। बहू ने शराफ़त से काम लिया कि उस समय तो मुँह से कुछ न बोलीं; परन्तु सायं समय अपने कमरे में जा कर सारा क़िस्सा सुना दिया। मियाँ अजीब मुसीबत में थे। न माँ को कुछ कह सकते थे और न बीवी को। अन्त में क्रोध पीकर मौन हो गये। परन्तु इन झगड़ों के कारण मन मैला हो गया।

यह सब कुछ आख़िर क्यों हुआ? बस इसी लिये हुआ कि न सास

ने परिस्थिति का विचार किया और न बहू ने। सास साहिबा सदा ही अनाज दिया करती थीं, तो उस दिन भी दे देतीं। आखिर अनाज देने में ऐसा समय ही कौन सा लगता है। अब रहा बहू का यह कहना कि मुझे क्या मालूम कौन सा अनाज कितना दिया जाता है, तो यह भी कुछ बुरा मानने की बात नहीं थी। उस ने कुछ झूठ तो बोला ही नहीं था। बड़ी बी को इस आयु में सच्ची बात का बुरा मानना कुछ शोभा नहीं देता था। अब रहीं बहू, तो उन को ऐसे आवश्यक काम को छोड़ कर ब्लाउज़ सीने लग जाना कुछ ठीक नहीं था। ब्लाउज़ कुछ भागा तो जाता ही नहीं था। यह अवश्य है कि उन्होंने इससे पहले कभी अनाज नहीं निकाला था और यह मालूम नहीं था कि कितना-कितना अनाज दिया जाता है, तो इस के सम्बन्ध में वे यदि सास से पूछ लेतीं, तो क्या हानि थी। बात यह है कि अवसर को समझ कर कोई बात न करना सदा झगड़े पैदा करता है।

सास और बहू को किसी दावत या बरात में मिल कर जाना बस गज़ब था। सास ठहरी पहले ज़माने की बुढ़िया कि पुरानी रीतियों से ज़रा इधर-उधर होना उन के निकट नास्तिकता या पाप से कम नहीं था। पति मर चुके थे। इसलिये मिहदी तो नहीं लगाती थीं, परन्तु अच्छा कपड़ा और भूषण पहनने में जवान लड़कियों को मात देती थीं। यह अवश्य है कि उनके कपड़े और भूषण पुराने ढंग के होते थे, परन्तु होते थे बड़े ठाठ के। कामदो दुपट्टा, उस पर टिका हुआ सुनहरी फीता, बाबर लेट की अंगिया कुरती, उस पर बारीक मलमल का कुरता। अतलस का तंग मुहरी का पाजामा पाजामे में लटकता हुआ लाल रेशमी इज़ारबन्द। इज़ारबन्द में चाँदी के लच्छे में पड़ी हुई कुंजियां कानों में जड़ाऊ बालियाँ, हाथों में सोने की चूड़ियाँ। सारांश जो-जो चीज़ें उन्होंने जवानी में पहनी थीं, उनमें से एक को भी इस बुढ़ापेमें नहीं छोड़ा था। इत्र मलने का शौक़ था। सदा खस या मोलिया के इत्र से उन के कपड़े बड़े महकते थे। इस डर से कि कोई आपत्ति न उठा बैठे

कभी-कभी कह भी दिया करती थीं कि "मेरे मियां मर गये, तो क्या हुआ, मेरा चाहने वाला बेटा तो मौजूद है।"

अब इन बड़ी बी के रंग को देखिये और बहू के रंग पर दृष्टि डालिये। ये पढ़ी-लिखी थीं। इस लिये प्रत्येक नया फ़ैशन सब से पहले इनके घर में घुसता था। पुराने ढंग की कुछ चीजें भी इन को जहेज़ में मिली थीं। परन्तु वे इन्होंने थोड़े ही दिनों में ठिकाने लगा दीं। भूषणों को गलवा कर नकलेस और बुन्दे बनवाए। कपड़ों को काट छाँटकर नया रंग दे दिया गा मामाओं और उनकी लड़कियों के हवाले किया। अब ट्रंकों और सूटकसों में रह गया क्या कि मूल्यवान साढ़ियां, अच्छे अच्छे ब्लाउज, रेशमी जुराबें, ऊँची एड़ी के जूते, सैण्डल और चप्पलें, हलके फुलके भूषण; हीरे के बुन्दे, जड़ाऊ पतले-पतले नकलेस, प्लाटि-नम की चूड़ियाँ, कुछ अंगूठियां और बस।

मौलवी अशरफ़ अली की बेटी के ब्याह में दोनों को बुलावा आया। बड़ी बी तो ज़रा सी देर में अपने पुराने ढंग के कपड़े पहन कर तैयार हो गईं, परन्तु इशरत जमानी हैं कि उनका बनाव श्रृंगार किसी तरह सम्पन्न ही नहीं होता, कद आदम दर्पण के सामने खड़ी हैं। एक ब्लाउज़ पहनती हैं और उतार देती हैं। एक साढ़ी पहनती हैं, पसन्द नहीं आती उतार देती हैं। अब यदि साढ़ी और ब्लाउज दोनों जुदा जुदा करके पहन भी लिये, तो दोनों ने मेल नहीं खाया। इस लिये दोनों उतार दिये गये। खैर कोई घण्टे डढ़ घण्टे में यह कठिनाई आसान हुई, अब गहनों का चक्कर आया। इसकी उलट फ़ेर में भी कोई डेढ़ घण्टा भर लग गया। इसके पश्चात् आप ही विचार कीजिये कि इन दो अढ़ाई घण्टे में बड़ी बी का क्या कुछ न रक्त औटा होगा। अब जो बहू साहिबा कमरे से बाहर तशरीफ़ लाईं, तो बुढ़िया के आग ही तो लग गई। ज़रा मौलवी अशरफ़ अली के घर को देखिए जहां रसूल और अल्लाह के नाम के सिवा कुछ होता ही नहीं और इन बेगम साहिबा के लिबास को देखिये।

जल कर, बड़ी बी बोलीं—

"वाह बेटा वाह ! या तो कमरे में से निकलती ही नहीं थीं या निकली हो तो इस रंग में निकली हो। भला कौन तुम को देख कर कहेगा कि यह किसी मुसलमान घर की लड़की है। मौलवी साहिब के यहाँ ये कपड़े पहन कर जाओगी, तो नक्को बन जाओगी। तुम तो भला क्यों शर्माने लगी, हां मुझे शर्माना पड़ेगा। सब यही कहेंगे कि इस सास को अल्लाह ने इतनी भी तौफ़ीक नहीं दी कि बहू को संभाल कर रखें। ज़रा नव्वाब इनायत अल्लाह खाँ के घराने को देखो और उनकी उस बहू को देखो। जाओ बेटा जाओ, पहले आदमियों के से कपड़े पहन कर आओ।"

पहले तो यह कि स्वतंत्र विचार वाली कब उचित समझ सकती थी कि बड़ी बी के कहने से फ़ैशन छोड़ दिया जाय। दूसरे, पुराने नमूने के कपड़े अब रहे ही कहाँ थे, जो पहने जाते। इस लिये बहू ने कहा, "बी अम्माँ मेरे पास तो अब इसी नमूने के कपड़े रह गये हैं।"

सास ने कहा—"अरे बीबी ! यह तुम क्या कह रही हो। तुम को दहेज़ में क्या कुछ नहीं मिला। अल्लाह बख्शे तुम्हारे ससुर ने क्या कुछ बनवा कर नहीं दिया और तुम कह रही हो कि मेरे पास इन कुछ हिंदुस्तानी कपड़ों के सिवा अब कोई कपड़ा नहीं है। यह भी अच्छी हुई, कल को कहोगी कि मेरे पास दहेज़ का कोई गहना ही नहीं रहा। जाओ, जाओ, कपड़े बदलो। मैं तुम्हारी ये बातें नहीं सुनूँगी और न इन कपड़ों में तुम को साथ ले जाऊँगी।"

बहू ने कहा—"तो आप ही चल कर देख लें कि मैं सच कह रही हूँ या झूठ।"

यह ज़रा खुदा लगती बात थी, इसलिये सास बहू दोनों कोठे पर पहुँचीं। बहू ने कुंजियाँ लेकर सारे ट्रंक और सूटकेस खोल डाले और बड़ी बी ने कपड़ों को निकालना आरम्भ किया। ट्रंक में से सब कपड़े निकाललीं और जब मतलब का कोई कपड़ा न निकलता, तो बुड़-बुड़ातीं

हुई उन कपड़ों को गूदड़ की भाँति ट्रंक में ठूंस देतीं। सारांश, सारे ट्रंक और सूटकेस देख डाले, परन्तु उन से एक कपड़ा भी न निकला, जो उनकी इच्छा के अनुकूल होता। अंत में जल कर कहा, "यदि तुम्हारे पास कपड़े नहीं हैं, तो मेरे कपड़े पहन कर चलो।"

यह भला किस प्रकार संभव हो सकता था कि नये ज़माने की लड़की तंग पाजामा और अंगिया कुरती पहन कर तीन गज़ का दोपट्टा ओढ़े। घर बिगड़ जाय, तो बला से बिगड़ जाय परन्तु फ़ैशन के विरुद्ध किसी प्रकार कार्य नहीं किया जा सकता। परिणाम यह निकला कि बहू ने शादी में जाने से इन्कार कर दिया। बड़ी बी गईं। पूछा गया बहू क्यों नहीं आईं, तो कह दिया, "उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है।"

मैं आप से पूछता हूं कि इन दोनों में ग़लती किस की है? आप को चूंकि नये ज़माने की हवा लगी है, इस लिये आप तो यही कहेंगे कि ग़लती बड़ी बी की है। परन्तु मैं यह कहूँगा कि ग़लती बी इश्रत की है, प्रत्येक वस्तु के लिये स्थान और अवसर होता है। कहावत विख्यात है—'खाए मन भाता पहने जग भाता'। भला मौलवी अशरफ़ अली के यहाँ इस रंग में जाना कोई समझ की बात थी वे लोग ठहरे पक्के रूढ़िवादी बी इश्रतको इस रंग में देखते, तो सिवाय लाहौल पढ़ने के और क्या करते और सच-मुच उनकी सास को क्या कुछ बुरा भला कहा जाता कि इसी सी लौंडिया को न सम्भाल सकी और आवारा कर दिया। अब रहा 'फ़ैशने-बल लिबास,' तो इस के पहनने का कौन निषेध करता है। जिस महफ़िल में उसका ज़ोर है वहाँ पहनकर जाओ, और अवश्य पहनकर जाओ। अपितु उसे भी कुछ कम कर दो तो, तुम से कोई पूछने वाला नहीं है।

आजकल की लड़कियाँ यदि बुरा न मानें, तो एक बात कहूँ। मैं देखता हूँ कि शिक्षा का इन पर उलटा प्रभाव पड़ रहा है, क्योंकि ये सदा प्रयत्न करती हैं कि इनकी बात मानी जाय। खैर ये आपस में सिर-फटव्वल करें, तो कुछ हानि नहीं है। परन्तु ये लड़कियाँ ग़ज़ब तो यह करती हैं कि अपनी शिक्षा का दबदबा बूढ़ों और गुरुजनों पर डालती

हैं। आखिर बूढ़े क्यों दबने लगे। जब वे समझते हैं कि उन्होंने अपने बाल कुछ धूप में तो सफेद किये ही नहीं। शिक्षा न हो अनुभव तो है। अब नये उनकी बात मानती हैं और न वे इनकी। बात बढ़कर दिलों में फ़र्क आ जाता है। बड़े समझते हैं कि नई पौद का दिमाग़ ख़राब हो गया है। दो किताबें क्या पढ़लीं हैं कि अफलातून बन गये हैं। नई पौद समझती है कि इन बुड्ढों की अक्ल सीठिया गई हैं। पढ़ा-लिखा तो खाक नहीं, परन्तु प्रत्येक विषय में हमारी बात काटने को इस प्रकार तैयार हो जाते हैं, मानो हम ने कोदों देकर शिक्षा पाई है।

जब जग का यह रंग है, तो आखिर इश्रत ज़मानी और उनकी सास इस से कैसे बचे रहतीं। शायद ही कोई दिन जाता होगा, जो किसी न किसी बात पर दोनों में बहसा बहसी न हो जाती हो। बहू हुज्जत पर हुज्जत करती। तर्क द्वारा बात को समझाने के प्रयत्न में हर्बर्ट स्पेंसर और 'मिल' के वाक्य दुहराती परन्तु वे उन सब युक्तियों पर यह कह कर पानी फेर देतीं कि चल री लड़की कभी किसी वअ्ज़ (धार्मिक व्याख्यान) में तो गई नहीं, तुझे क्या मालूम कि बेर की दुम किधर है। तू ने जो कुछ कहा, पहले, तो मेरी समझ ही में नहीं आया, दूसरे, मैं अपने पीर से इसके विरुद्ध सुन चुकी हूँ। भला मैं तुम लोगों की बातें क्या मानती हूँ। इसके पश्चात बी इश्रत ने अपनी सास के पीर की अल्पज्ञता के सम्बन्ध में कुछ कह दिया, तो समझ लो क़यामत आ गई। कभी कभार क्या, मैं तो हर दूसरे तीसरे दिन इस घर में यही गड-बड़ होती देखता था। इसका कारण या तो यह था कि जान बूझ कर बी इश्रत सास को जलाने के लिये, उनके पीर की चर्चा छेड़ देती थीं या वे चाहती थीं कि किसी प्रकार सास का दिल उनके पीर से फेर कर जो छ महीने के छ महीने भेंट शुल्क भजा जाता है, वह बन्द करा दें। वे कहती थीं, "बेइल्म नतवाँ ख़ुदारा शिनाख़्त" (विद्याहीन मनुष्य ईश्वर को नहीं जान सकता)। और सास समझती थीं कि "ज़ाहिरी इल्म दिल का ज़ंग है',—बाह्य ज्ञान हृदय का ज़ंगाल है।

सास अपने पीर की करामतें—चमत्कार—बयान करते-करते थक जाती थीं और बी इश्रत यह कह कर उनके हृदय में निश्तर चुभो देती थीं कि आप को धोखा हुआ या आप ने ग़लत सुना।"

साहिब सच तो यह है कि अपने पीर के सम्बन्ध में कोई बुड्ढा ऐसी बातें नहीं सुन सकता। आखिर इन नये जमाने वालों को बुड्ढों के पीरों से सम्बन्ध रखना क्या आवश्यक है। ये अपने लिये कोई अपटडेट गुरु बना लें, जो बाहर से फ़िरिश्ता (देवता) और अन्दर से शैतान हो, चलो छुट्टी होती।

यही क्या है, प्रत्येक बात में सास बहू में मतभेद होता था। युद्ध के समाप्त होने पर घोषणा हुई कि आज रात प्रेड के मैदान में आतिशबाज़ी छुटेगी। सारा शहर उलट पड़ा। बी इश्रत और उनकी सास भी गाड़ी में बैठ कर वहाँ पहुंचीं। गाड़ियों की लाइन एक ओर थी, उसी में इनकी गाड़ी भी ठुँस गई। रात को कोई साढ़े नौ बजे महताबी छुटी और इसके बाद सारे मैदान में आतिशबाज़ी से एक आग सी लग गई। आतिशबाजी अच्छी थी और अच्छी होनी भी चाहिये थी कि किस अवसर पर छुट रही थी। परन्तु बी इश्रत की सास को एक आँख न भाई। बी इश्रत ने प्रशंसा की। परन्तु बड़ी बी ने यह कह कर डाँट दिया कि "कभी आतिशबाज़ी देखी भी है। इससे अच्छी आतिशबाज़ी तो मेरे ब्याह पर मेरे सुसरे के यहाँ छुटी थी। इस सड़ियल आतिशबाज़ी की प्रशंसा करते-करते तुम्हारा मुँह शुष्क हुआ जाता है। मलिका विक्टोरिया के ब्याह के उत्सव पर जो आतिशबाज़ी छुटी थी, यदि वह देखती तो मालूम होता कि आतिशबाज़ी किस को कहते हैं।"

बहू ने धीरे से पूछा—"अम्माँ-जान! जब मलिका विक्टोरिया का ब्याह हुआ, उस समय आप पैदा हो चुकी थीं?"

बड़ी बी ने कहा—"पैदा हो चुकी की बात भी खूब रही। अरे उस समय तो कोई आठ नौ वर्ष की थी।"

बहू ने पूछा—"आप की आयु क्या है?"

सास ने उत्तर दिया—"ऐ है, मैं ने अपनी आयु लिख कर थोड़ी रख छोड़ी है । होगी कोई पचास साठ की । लो यूं हिसाब कर लो कि जब तुम्हारे मियाँ अर्थात् मेरा अनवर पैदा हुआ है, उस समय मैं कोई बीस वर्ष की थी । अब अनवर की आयु बहुत हुई—बहुत हुई तो कोई पचीस वर्ष की होगी । इस के बाद हिसाब लगा लो कि मेरी आयु क्या है ।"

बहू ने कहा—"बी अम्माँ उनकी आयु कोई तीस वर्ष की जान पड़ती है ।" सास ने इस पर ऐसा चुभता हुआ वाक्य कसा कि बी इश्रत घम होकर रह गईं । बुढ़िया ने कहा—"हाँ बेटा सच है, मुझे अनवर की आयु क्यों मालूम होने लगी । मालूम तो तुम्हें होगी । तुम ही ने तो उस को जना है ।"

यह चोट खाने के बाद भी इश्रत कब चुप रहने वाली थीं । कहने लगीं—"अच्छा आप ही का कहना ठीक सही । अब हिसाब कर के देखिये । आप कहती हैं कि जब वे पैदा हुए, उस समय आपकी आयु बीस वर्ष की थी । उनकी आयु आप के हिसाब से पच्चीस वर्ष की है । इस प्रकार तो आप की आयु पैंतालीस वर्ष की हुई । अब १९४५ ई० है । मलिका विक्टोरिया की शादी १८४० में हुई थी । उस को १०५ वर्ष हुए । फिर मुझे बताइये कि आप ने उसकी शादी में आतिशबाज़ी छुटते कैसे देखा । और हाँ यह तो बताइये कि वह आतिशबाज़ी छुटी कहाँ थी ?"

बड़ी बी ने कहा—"इसी मैदान में ।"

बी इश्रत ने कहा—"१८४० ई० में तो यह मैदान ही नहीं था । यहाँ तो बड़े-बड़े मुहल्ले आबाद थे ।

"१८५७ ई० के बाद मकानों को तोड़ कर यह मैदान निकाला गया है ।" जब बड़ी बी इन हुज्जतों से तंग आ गयीं, तो उन्होंने कहा, "बेटा झगड़ा ही क्या है, तू सच्ची और मैं झूठी । गज़ब खुदा का कि जो अपनी आँखों देखी कहे वह तो झूठा और जो बिना देखे तर्क छाँटे

वह सच्चा। अब यह भी कह देना कि तुम ने अपने ब्याह के दिन में आतिशबाजी नहीं देखी और इस तरह की उलटी सीधी बातें बना कर मुझे झूठा बना देना।"

बी इश्रत ने कहा, "इस में बातें बनाने की क्या आवश्यकता है। पहले ज़माने में आतिशबाज़ी दुलहे के घोड़े के सामने छुटा करती थी। दुलहन पीनस में पीछे पीछे होती थी। उस ज़माने में जो कुछ पर्दा होना था, उस के खयाल से रौंगटे खड़े होते हैं। इसके पश्चात् आप ही बताइये कि आपने अपनी शादी में आतिशबाज़ी छुटते कैसे देखी ?"

यह हुज्जत ऐसी थी कि यदि इसके विरुद्ध ये कुछ कहतीं, तो इन के पर्दे पर हर्फ़ आता। इस लिये चुप हो गईं। परन्तु बी इश्रत कहां मानने वाली थीं। उन्होंने कहा, "अजी बी अम्मा, पहले ज़माने में जो आतिशबाज़ी छुटती थी, उस में और आज कल की आतिशबाज़ी में क्या अन्तर है ?"

बड़ी बी ने कहा—"बेटा, पहले अनार तो ऐसे होते थे कि क्या कहूँ। ये सामने जो वृक्ष हैं ना, खुदा झूठ न बुलवाए, तो इन से भी ऊँचे जाते थे, और फूल तो ऐसे झड़ते थे कि भई वाह वाह! चर्खियों का यह हाल था कि चलीं तो बस चलीं रुकने का नाम ही नहीं लेती थीं और उन में ऐसे रंग-बरंग फूल झड़ते थे कि दिल लोट जाता था। अब क्या है। देख लो ज़रा अनार छुटा और फुस सूँ होकर रह गया। चर्खी ने दो चक्कर खाए, और समाप्त और फूल तो ऐसे बुरे होते हैं कि थू।"

बी इश्रत ने पूछा—"बी अम्माँ यह आतिशबाज़ी क्यों कर बनाते हैं ?"

सास ने उत्तर दिया—"मुझे क्या मालूम। क्या मैं आतिशबाज़ की बेटी हूं या बहू हूं, जो मुझे आतिशबाज़ी बनाना आता हो। मियाँ आएँ, तो कहना वे कहीं से नुस्ख़ा लिखवा कर ला देंगे। परन्तु बेटा, आतिशबाज़ी बनाना तो ज़रा सोच-समझ कर बनाना। कहीं ऐसा न

हो, सारा घर भक से हो कर रह जाय।"

बहू ने उत्तर दिया—"ऐ लो, आपने यह क्यों समझ लिया कि मुझे आतिशबाज़ी की दुकान खोलनी है। मै तो यह बताना चाहती हूं कि पहले जो आतिशबाज़ी बनती थी, उसमें और अब की आतिशबाज़ी में क्या अन्तर है। पहले इसमें पड़ता ही क्या था—बारूद और लौह-चून।"

सास ने कहा—"लौहचून क्या बला होती है?"

बी इश्रत ने कहा—"ऐ है, आप यह भी नहीं जानती कि लौह-चून क्या है। लोहे के बारीक-बारीक कणों को लौह चून कहते हैं। इसी के जलने से आतिशबाजी के फूल निकलते हैं। लौहचून से जो फूल बनते हैं, वे सुनहरी होते हैं और अब आतिशबाज़ी से हरे रंग का जो फूल निकलता है, वह इस लिये निकलता है कि अब बारूद में एक नहीं कई प्रकार की चीजें डाली जाती हैं। आयरन सल्फेट डाला जाता है, मगनेशिया डाला जाता है।"

बड़ी बी ने कहा—"जी अब बस करो। न मैं आतिशबाज़ हूँ और न मेरे बाप दादा आतिशबाज़ थे। यह नुस्खे उनको बताओ, जो आतिश-बाजी की दुकान खोलना चाहते हैं। यह भी अच्छी हुई कि आईं तमाशा देखने और यहाँ भी लगी अपनी योग्यता बघारने।"

कुशल रही कि यह सुनकर बी इश्रत चुप हो गईं, अन्यथा भगवान जाने बात कहाँ से कहाँ पहुँचती और देखा जाय, तो बुढ़िया की बात ठीक थी, आम खाने से मतलब है, पेड़ गिनने से क्या लाभ? अब रहा बड़ी बी की जानकारी में वृद्धि करना, तो कहीं बुड्ढे तोते भी कुछ पढ़ते हैं। ये तो जो कुछ उलटा-सीधा जानते हैं, उसी में मगन रहते हैं और उसी पर उन की आस्था है।

ख़ैर ये बातें तो ऐसी कष्टदायक नहीं थीं। बड़ी बी जो आक्रमण बी इश्रत के ख़ानदान पर करती थीं, वह असह्य था। यह तो मुझे मालूम नहीं कि सच है या झूठ। हां कहा जाता है कि बी इश्रत के परदादा

ने कोई कस्बी (वेश्या) घर में डाल ली थी। उसी से उसके दादा पैदा हुए। दूसरों की जात में कीड़े डालना शहर वालों का सबसे बड़ा मन बहलावा है। जब भी बी इश्रत किसी विषय में अपनी जानकारी का प्रदर्शन करतीं, और बड़ी बी उसका कोई उपयुक्त उत्तर न दे सकतीं, तो शीघ्र ही बात का रुख़ बदलकर कहतीं—

"तो मैं इन बातों को क्या जानूं। ये चीज़ें तो उनको मालूम होती हैं, जिनके ख़ान्दान में कोई कोठे की बैठने वाली रह चुकी हो। हम बेचारी घर की बैठने वालियाँ इन बातों को क्या समझें।"

यह चुटकी ऐसी सख़्त होती कि बी इश्रत तलमला उठती थीं। बहुत कुछ जली-कटी बातें करती थीं, परन्तु बड़ी बी के इस निश्तर की चुभन किसी तरह नहीं जाती थी। जब कुछ बन नहीं पड़ता था, तो कहती थीं—

"यदि आप का ख़ान्दान बड़ी नाक वाला था, तो हम नकटों में ब्याह ही क्यों किया ?"

इसका उत्तर यह था कि—"मैं क्या करूँ। मैं तो इस सम्बन्ध पर राज़ी नहीं थी। तुम्हारे बाप और अल्लाह बख़्शे अनवर के बाप में कुछ ऐसी मुहब्बत थी कि बावुजूद लोगों के कहने के वे मरने वाले इस सम्बन्ध को करने पर अड़े रहे। सबने समझाया भी क्यों ख़ान्दान के नाम को बट्टा लगाते हो। परन्तु उन्होंने कहा, तो यही कहा, कि अनवर का ब्याह होगा तो यहीं होगा, नहीं तो मेरे जीवन में और कहीं नहीं होगा। आख़िर तुम को लाये, आप अब तो मर गये, मुझे मुसीबत में फँसा दिया।"

सारांश, मैं क्या कहूँ, इन सास बहू के झगड़ों से कितना नाक में दम आ गया है। मेरा भी दोनों ख़ान्दानों से सम्बन्ध है। सब सामने होते हैं, मैं भी कभी-कभी उनके यहाँ चला जाता हूं। हमारे और उनके घर के बीच में खिड़की है, इसलिये ज़रा ज़रा-सी बात की सूचना हमारी बेगम साहिबा हमको दे देती हैं। ज़रा कुछ आवाज़ बढ़ी और यह काम

छोड़ कर खिड़की के पास जा खड़ी हुईं। अब इधर की दुनिया उधर हो जाय, क्या संभव है कि आरम्भ से अन्त तक झगड़ा सुनने से पहले ये वहाँ से खिसकें। अधिक तो अपनी बेगम साहिबा से इन सास बहू के हालात मालूम होते हैं, और कुछ उस समय मालूम होते हैं, जब मैं उनके यहां जाता हूं। और बड़ी बी अपना दुःखड़ा रोने को मुझे पकड़कर अपने पास बिठा लेती हैं। परन्तु मैं यह अवश्य कहूगा कि बी इश्रन हैं बहुत तेज पर क्या मजाल जो सास की शिकायत कभी मेरे या किसी के सामने उनकी जिह्वा से निकली हो। जानती हैं कि दूसरों से इन बातों का कहना व्यर्थ है। मुफ्त में बदनामी होनी है और लाभ कुछ नहीं होता। हां अपने मियाँ को भरती हैं और अच्छी तरह भरती हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि मियाँ अनवर अब अपनी माँ से ज़रा खिच गए हैं। परन्तु पुरानी सभ्यता वालों में बचपन गुज़ारा है, इसलिये मुँह से उफ़ नहीं करते। परन्तु यह भी आखिर कहाँ तक। यदि यही मरना-मारना रहा, तो एक दिन उनकी भी जुबान खुल जायगी और उसके बाद बड़ी बी का भगवान ही राखा है। जीना दूभर हो जायगा।

मेरी तो यह राय है कि या तो अल्लाह मियाँ यह करें कि जिस-घर में इस प्रकार के झगड़े आरम्भ हों, उस घर के बुड्ढों का खात्मा-बिलखैर कर दें, या ये बुड्ढे और बुड्ढियां अपना गला घोंट कर "हेरा-फेरी" के सिद्धांत का पालन करें। म्यूनिसिपिल कमेटी में ऐसे लोगों की पहले से सूची तैयार कर ली जाय, जो इस प्रकार के झगड़ों से विवश होकर आत्म-हत्या करना चाहते हैं और विधान में आत्म-हत्या को धारा के अधीन कुछ अवस्थाओं में छूट दे दी जाय कि ऐसी विवशताओं की परिस्थिति में आत्म-हत्या अपराध नहीं है, क्योंकि मैं तो यह समझता हूं कि विचारों और कार्यों की स्वतन्त्रता के इस ज़माने में इन पुराने लोगों का जीवन ही 'असमय की रागनी' है। यह जितनी शीघ्र समाप्त हो जाय उतना ही अच्छा है।

—मिर्ज़ा फ़रहतुल्लाह बेग

मिस चमेली

यह जो शेख "सअ्दी" ने कहा है, "पीर शो बयामोज[1]" सर्वथा सत्य कहा है। वर्षों साहित्यिक पत्रिकाओं में लेख लिखते रहे, किसी को कानों कान खबर न हुई कि हम भी साहित्यकार हैं। अधिक से अधिक यह हुआ कि दो चार सम्पादकों से परिचय हो गया और उनके तकाज़ों ने नाक में दम कर दिया। या कुछ साहित्यिक श्रेणी के लोग, जो हमें पहले ही से जानते थे, अब ज़रा अच्छी तरह जान गये। यदि किसी ऐसी सभा में आमन्त्रित किये गये, जहां शहर के सम्भ्रान्त और धनाढ्य व्यक्ति उपस्थित थे और किसी व्यक्ति ने सहानुभूति-वश हमारा परिचय उनसे कराया, तो हमारा स्वागत इन शब्दों से किया गया

"मिर्ज़ा उजबक! उजबुक कौन! वही वही तो नहीं, जिनके पान बहुत विख्यात हैं। अच्छा कभी चूनामण्डी गुज़रने का अवसर मिला, तो अवश्य उनके पान भी खाएंगे।"

"अच्छा तो यह हैं उजबुक? वाह-वाह शक्ल-व-सूरत से बिल्कुल उजबुक ही नज़र आते हैं।"

"प्रसिद्ध साहित्यिक हैं। हमने तो उनका नाम पहली बार सुना है।"

आखिर एक दिन जो गुमनामी अथवा अप्रसिद्धि का विश्लेषण किया, तो मालूम हुआ कि कुसूर अपना ही है। साहित्यिक पत्रों में

---

१. बूढ़े हो जाने पर भी सीखते रहो।

लिखना पहले दर्जे की हमाक़त थी। एक तो साहित्यिक पत्र छपते ही कितनी संख्या में हैं और फिर उन्हें ख़रीदता और पढ़ता कौन है? कुछ कवि और साहित्यिक, जिन्हें पत्रिका मुफ्त भिजवायी जाती है या कालेज के कुछ मेधावी विद्यार्थी, जिन्हें ग़ज़लें और कविताएँ पढ़ने का शौक़ होता है, परन्तु जो कुछ लोग साहित्यिक-लेख सिरे ही से नही पढ़ते? वास्तव में साहित्य सम्बन्धी लेख शुष्क भी तो इतने होते हैं कि उनके शीर्षक पढने के पश्चात् ही कानों को हाथ लगाने को जी चाहता है। अस्तु निश्चय किया कि भविष्य में सार्वजनिक पत्रिकाओं ही में लिखा करेंगे।

संयोग वश पता चला कि बम्बई का विख्यात फिल्मी पत्र "फ़िल्म-बाज़" अपना "अभिनेतृ अंक" निकाल रहा है। हम ने तुरन्त एक लेख लिखा। शीर्षक था "मिस चम्बेली से भेंट।"

कुछ दिनों के पश्चात् सम्पादक महोदय का पत्र आया, "लेख बहुत पसन्द आया। पारिश्रमिक के रूप में पचास रुपये का चैक भिजवा रहा हूँ। आशा है कि आप भविष्य में भी 'फ़िल्म-बाज़' की सरपरस्ती फ़रमाते रहेंगे। हाँ अपनी फोटो अवश्य भेजियेगा।"

चैक को देख कर बाछें खिल गईं और अनायास मुंह से निकला, "भगवन्! हम भी कितने सीधे सादे थे कि साहित्यिक पत्रों में लिखते रहे। यदि आरंभ ही से "फ़िल्म बाज़" में लिखते, तो आज ख़ासे मालदार होते। साहित्यिक लेखों की तुलना फिल्मी लेख से की, तो पता चला कि जहां एक साहित्यक लेख के लिये घण्टो सिर खपाना पड़ता है, वहां एक फिल्मी लेख मिनटों में लिखा जा सकता है। "मिस चम्बेली से एक भेंट" को ही लीजिये। लिखा ही क्या था हम ने उस में—यही कि—बूटा सा क़द, छरीरा बदन, सुन्दर नाक नक्शा। मिस चम्बेली सचमुच ही मिस चम्बेली हैं'''वह एक अत्यन्त रहस्यमयी अभिनेतृ है। उसे काली बिल्लियों और भूरे रंग के ख़रगोशों से अत्यन्त प्रेम है। वह अपनी त्वचा के सौन्दर्य को अक्षुण्ण रखने के लिये देसी

साबुन का प्रयोग करती है। उसके दान्त मोतियों के समान सफ़ेद हैं, क्योंकि वह एक तेज चाकू से उन्हें प्रत्येक समय खुरचती रहती है। उसे 'इत्रि-हिना'— मिहदी का इत्र सर्वथा पसन्द नहीं। एक बार उसने भूल से इत्रि-हिना सूंघ लिया था और वह बेहोश हो गई थी। होश में आने के बाद उसे पता चला कि इत्र-हिना नहीं था, क्लोरो-फार्म था।

मिस चम्बेली प्रायः शाम का खाना सुब्ह और सुब्ह का खाना शाम के समय खाती है। आलू, टमाटर, गोभी और बैंगन के अतिरिक्त उसे कोई तरकारी पसन्द नहीं। उसे हवाई जहाज़ चलाना बिल्कुल नहीं आता। उसने मुझे बताया कि वह उस व्यक्ति से विवाह रचायगी जो बहुत अच्छा हवा-बाज़ हो। खोटे सिक्के, खाली बोतलें और मिट्टी के लोटे इकट्ठे करने का उसे बहुत शौक है, आदि आदि—।"

इस लेख का छपना था कि सारे शहर में तहलका मच गया। जिसे देखो 'फ़िल्मबाज' का "अभिनेतृ अंक" हाथ में लिये बधाई देने चला आ रहा है—"वाह 'उज़बुक' साहिब, वाह, खूब लेख लिखा है। खुदा की क़सम मज़ा आ गया। क्या रहस्योद्घाटन किये हैं—आहा, लेख क्या लिखा है, क़लम तोड़ कर रख दिया है।"

उन्हीं दिनों की बात है कि एक शाम हम पान खाने के लिए कत्था-मल, चूना मल की दुकान पर रुके। हमने देखा कि दोनों पनवाड़ी हमें देख कर आपस में खुसर-फुसर कर रहे हैं। एक-आध मिनट के पश्चात् कत्था मल ने जरा ऊँची आवाज में कहा—

"तो तुम ही पूछ लो ना, शर्माते क्यों हो ?"

हमने पूछा—"क्या बात है भई ?"

चूनामल ने डरते-डरते कहा—"जी एक बात पूछनी थी।"

"कहिये।"

"आप मिर्जा उज़बुक हैं ना ?"

"जी हाँ मैं मिर्ज़ा उज़बुक हूँ।"

"ही ही ही। आप की फोटो 'फिल्म-बाज' में देखी थी। वह मज-

मज़मून)........चम्बेली पर........आपने लिखा था ?"

"हाँ साहिब, हमने लिखा था।"

"ही ही ही बहुत अच्छा मज़मून है। हमने उसे पढ़ा था। चम्बेली हुत अच्छा काम करती है जी। हम ने अपनी दुकान में चम्बेली ही की तस्वीरें लगा रखी है!"

हमने देखा कि उसकी दुकान में सचमुच चम्बेली ही चम्बेली नज़र आती है। पैसे देने के लिये बटुवा निकाला ही था कि कत्था मल ने हमें रोकते हुए कहा—

'ना, साहिब ना, ऐसा न कीजिये। हम आप से पैसे नहीं ले सकते।"

"परन्तु क्यों?" हमने हैरान होकर पूछा।

"अजी रहने दीजिये, आप इतने बड़े आदमी हैं, मिस चम्बेली को जानते हैं। आप से भला कैसे......"

बहुत अनुरोध किया, परन्तु वह न माना, अपितु कहने लगा—"आइन्दा भी जब कभी पान का शौक़ फरमाना हो, हमें याद फरमाइयेगा।"

पान चबाते हुए सड़क पर जा रहे थे कि अकस्मात् एक हवालदार ने हमें पुकार कर कहा—

"अजी उजबुक साहिब! ज़रा ठहरिये।"

हवालदार को देख कर हमारा कलेजा धक से हो गया। खुदा खैर करे। कहीं इस के पास हमारी गिरफ्तारी का वारण्ट तो नहीं है। कहीं इसे हम पर जेल से भागे हुए किसी अपराधी का सन्देह तो नहीं हुआ।"

हवालदार साहिब ने कहा—"मैं परसों से आप की तलाश कर रहा हूँ। अच्छा हुआ आप संयोग से मिल गये।"

"परन्तु हवालदार साहिब हमने...हमारा मतलब है...कि।"

"अजी उज़बुक साहिब!" हवालदार साहिब ने हमारी बात सुनी

अनसुनी करते हुए कहा, "आपने तो कमाल कर दिया। यह लेख जो आपने लिखा है चम्बेली पर, भगवान की सौगन्द, चार बार पढ़ चुका हूँ और उतनी ही बार और पढ़ने का इरादा है।"

लेख की बात सुन कर जान में जान आई।

वे कहने लगे, "आइए ना, जरा गरीब-खाने तक। चाय पियेंगे और साथ ही आप से मिस चम्बेली के बारे में कुछ और विस्तार पूर्वक सुनेंगे।"

मेरे इन्कार के बावुजूद वे मुझे अपने यहाँ ले गये। चाय पीने के बीच में पूछने लगे, "उजबुक साहिब, यह जो आपने अपने लेख में लिखा है कि एक बार मिस चम्बेली ने एक चोर पकड़ा था, क्या यह सत्य है?"

"जी हाँ सर्वथा सत्य है।"

"परन्तु वह चोर कौन था?"

"चोर कहाँ था श्रीमान! वह तो एक भूखों का मारा कवि था।"

"भूखों का मारा कवि?"

"जी हाँ। बेचारा घर से लड़ाई आया था कि फिल्मों के गाने लिखेगा। परन्तु आप जानते हैं कि लड़ाई में जानकारी के बिना काम कहाँ बनता है। वो एक महीने स्टूडियो की खाक छानता रहा। इस बीच में जो पूँजी वह घर से लाया था, समाप्त हो गई। अन्त में एक दिन उसने चोरी करने की ठानी—एक छुरी या तलवार ले कर रात के एक बजे मिस चम्बेली के घर घुसा।"

"फिर?"

"हठात् चम्बेली की आँख खुल गई। वह शय्या से धरती पर उठ खड़ी हुई और कवि की आँखों में आँखें डाल कर कहने लगी—

"आप मुझे कत्ल करना चाहते हैं। शौक से कीजिये।

सरि-तस्लीम१ खमर२ है, जो मिज़ाजि-यार३ में आय ।

वास्तव में यह एक फिल्म का डायलाग था, जो मिस चम्बेली को समय पर याद आ गया । बस साहिब कवि ने जब यह डायलाग सुना तो गद्गद् हो गया । तलवार उसके हाथ से गिर पड़ी और अनायास उसके मुंह से निकला—

इस सादगी प कौन न मर जाय ऐ खुदा !
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं !!

मिस चम्बेली ने कमाल सफ़ाई से वह कुन्द तलवार उठाई और कवि पर वार किया । भूख से तो वह पहले ही निढाल हो रहा था, तुरन्त जमीन पर आ रहा । मिस चम्बेली ने घण्टी बजाई और उसके पठान नौकर ने कवि के हाथ-पाँव बाँध दिये और प्रातः उसे पुलिस के हवाले कर दिया गया ।

"खूब, खूब कमाल की दलेरी दिखाई मिस चम्बेली ने ।"

"जी हाँ ।"

"अच्छा, आपने यह भी लिखा है कि एक बार चम्बेली ने चलती गाड़ी से छलाँग लगा दी थी, वह क्या क़िस्सा है ।

"साहिब यह क़िस्सा बहुत लम्बा है । फिर कभी अर्ज करूंगा । अब आज्ञा चाहता हूँ ।"

रात के समय जब घर लौटे, तो हमारे पड़ोसी डाक्टर मनोहर लाल साहिब पधारे । छूटते ही कहने लगे—

"जनाब उजबुक साहिब, आप तो छिपे रुस्तम निकले । यह आपने लिखना कब से शुरू कर दिया । हम समझते थे, आप केवल अध्यापक हैं, परन्तु आप तो अच्छे खासे साहित्यिक भी हैं ।"

"आपने मेरा सम्मान बढ़ाया, बहुत बहुत धन्यवाद ! साहित्यकार तो क्या हूँ, यूँ ही मन बहलाने के रूप में कभी-कभार लिखा करता हूँ ।"

---

१. स्वीकृति सूचक । २. झुका है । ३. यार का मन ।

"अच्छा उज़बुक साहिब, यह जो आपने लिखा है कि मिस चम्बेली सुब्ह का खाना शाम को, शाम का खाना सुब्ह खाती है। इससे मिस चम्बेली को बदहज़मी की शिकायत तो नहीं हो जाती है।"

"श्रीमन यह सब निर्भर है आदत और अभ्यास पर। हमारा तो ख़याल है कि यदि कोई व्यक्ति थोड़ा सा अभ्यास कर ले, तो कुछ समय के पश्चात् उसे सुब्ह और शाम में कोई भेद देखना कठिन हो जायगा।"

"कुछ भी हो मैडिकल दृष्टिकोण से..."

"मैडिकल दृष्टिकोण को रहने दीजिये। यह फ़िल्म लाइन है। इसमें सब कुछ चलता है।"

कुछ दिनों के बाद एक अत्तार की दुकान पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ। मुझे देखते ही उठ खड़े हुए। स्वागत अभिवादन करने के बाद कुर्सी पेश की और कहने लगे—

"उज़बुक साहिब हमें मालूम न था कि आप इतने बड़े साहित्यकार हैं, अन्यथा यह गुस्ताख़ी कभी न होती।"

"कौन सी गुस्ताख़ी, श्रीमन ?"

"पिछले दिनों आप बनफ़शे का शर्बत लेने आये थे और हमने आपसे पैसे ले लिये थे।"

"इसमें तो कोई गुस्ताख़ी नहीं, आख़िर पैसे तो आप..."

"नहीं साहिब, यह बहुत बड़ी गुस्ताख़ी है। ख़ैर इसका प्रायश्चित कर दिया जायगा। बनफ़शे का शर्बत ही चाहिये ना आपको ?"

"जी हाँ, चार तोले दे दीजिये।"

"तोलों का हिसाब छोड़िये उज़बुक साहिब, आप बोतल ही ले लीजिये...अरे भई ख़ैराती लाल ! उज़बुक साहिब को शर्बत बनफ़शा बर्जा ख़ास की एक बोतल ला दो—"

"परन्तु श्रीमन मुझे बोतल नहीं चाहिये।"

"अजी साहिब हमारी ओर से तुच्छ उपहार समझ कर ले जाइये। वाह, वाह ! क्या लेख लिखा है आपने !"

बोतल भेंट करने के पश्चात् उन्होंने बताया, कि वे मिस चम्बेली के परोक्ष-रूप से प्रशंसक हैं। "फ़िल्म बाज़" का नियमित रूप से अध्ययन करते हैं और केवल यही एक पत्र है, जिसे उनकी दुकान पर पुड़िया बाँधने के काम में नहीं लाया जाता।"

उनका धन्यवाद करके घर पहुँचा, तो कुछ फ़िल्म-ज़दा लड़कियाँ आईं। बेचारी बेहद परेशान थीं और मेरा नेतृत्व चाहती थीं अर्थात् मेरे द्वारा पथ-निर्देशन चाहती थीं। उनमें से एक पूछने आई थी कि "यदि मैं काली बिल्ली मिस चम्बेली को भिजवा दूं, तो क्या वह स्वीकार कर लेगी ?—दूसरी के पास खोटे सिक्कों का ढेर था। वह उसे मिस चम्बेली को भेंट करना चाहती थी।—तीसरी यह जानने की इच्छुक थी कि मिस चम्बेली कौन सा देसी साबुन प्रयोग करती है ?"—इन सबको उचित परामर्श दियें गयें और वे प्रसन्नता पूर्वक सिधार गईं।

उस दिन एक विख्यात साहित्यिक पत्र के सम्पादक महोदय का पत्र मिला कि वे "फ़ानी बदायूनी" पर एक विशेष अंक निकाल रहे हैं। इसलियें हम उन्हें एक लेख "फ़ानी की शाइरी पर शोपनहार का असर" के शीर्षक से एक लेख लिख कर शीघ्र डाक द्वारा भिजवाएँ। हमने उन्हें उत्तर में जो पत्र लिखा वह सुननें के योग्य है।

"आदरणीय !—संभवतः आपको मालूम नहीं कि साहित्यिक लेखों से चिरकाल से ऊब चुका हूँ। मेरे ख़याल में यह सर्वथा समय का दुरुपयोग है तथा आर्थिक दृष्टि से बहुत घाटे का सौदा है। यदि मैं आपको पत्र के लिये लेख लिखूंगा, तो अधिक से अधिक आप यह करेंगे किमुझे वह अंक भिजवा देंगे या यह समझते हुए कि यदि मुझे अपना लेख पढ़ने का शौक हुआ, तो मैं स्वयं ही खरीद लूंगा, अंक भी नहीं भिजवायेंगे। अतः मैंने फैसला किया है कि मैं केवल फिल्मी लेख लिखा करूंगा। पचास रुपये पारिश्रमिक मिलता है। खाने को पान, पीने को शर्बत-बनफ़शा मुफ्त मिल जाता है और पड़ौसी समझते हैं कि हम

सचमुच बड़े साहित्यकार हैं। सत्य कथन के लिये क्षमा चाहता हूँ, यदि उचित समझें, तो मेरी ओर से अपने पत्र में यह घोषणा प्रकाशित कर दें कि भविष्य में कोई साहित्यिक पत्र मुझसे साहित्यिक लेख माँग न करे।"

—श्री कन्हैयालाल कपूर